भूमिका।

—꧁—

सन्ध्या और तर्पणकी पोथियोंका बाजारमें अभाव नहीं है, इस लिये यह प्रश्न हो सकता है कि फिर उनकी संख्या क्यों बढ़ायी गयी। इसका उत्तर यह पोथी ही देगी, पर संक्षेपमें इतना कहा जा सकता है कि यह पोथी किसी अभावकी पूर्त्ति करनेका दावा करती है।

हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें हिन्दुओंका ज्ञान बढ़ाना भी हिन्दू संघटन-का एक अङ्ग है। हिन्दुओंमें बहुतसी पूजा पाठ नित्य होती है, परन्तु न उसके करनेवाले समझते हैं कि क्या और क्यों करते हैं और न करानेवाले पण्डित या पुरोहित बताते या बता ही सकते हैं मेशीनकी तरह काम चलता है और उसके फलाफलकी ओर किसीका ध्यान नहीं है। इसीसे निरर्थक समझ कर लोग इनसे विरक्त हो जाते हैं और कितने तो परधर्मियोंकी बातोंमें फंसकर स्वधर्मतक छोड़ बैठते हैं। समय समयपर सनातनधर्मकी पुकार तो बहुत मचायी जाती है, पर उसकी रक्षाके उपायोंकी ओर किसीका ध्यान नहीं है। यह पोथी इस दिशामें कुछ काम करनेका प्रयत्न मात्र है। यदि पाठकोंने इसे अपनाया तो कुछ आगे बढ़नेका विचार किया जायगा।

पोथीके लिखनेमें हमें श्रीमान् चि० विनायकलाल खन्नाके पुस्तकालयकी पुस्तकोंसे बड़ी सहायता मिली है और प्रूफ संशो- कार्यमें पं० रामशंकर त्रिपाठीने भी परिश्रम किया है। इस लिये महाशय धन्यवादके पात्र हैं।

कलकत्ता :
अनन्त चतुर्दशी सं० १९८४ } अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी।

विषयसूची ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

सन्ध्या ।

विषय-प्रवेश ।

आजसे कई हजार वर्ष पहले आर्य जातिने अपना जो टाइम टेबल वा दिनचर्या बनायी थी, उसके अनुसार वह आचरण किया करती थी। वह दिनचर्या गृह्यसूत्रों और बाद उनके तथा धर्मसूत्रों और स्मृतियोंके आधारपर बने हुए आह्निकोंमें मिलती है। इनके अनुसार मनुष्यको ब्राह्म-मुहूर्तमें उठ कर फिर रातको सोनेतक क्या क्या करना चाहिये उसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। दिनरातमें आठ पहर होते हैं, परन्तु कार्यके सुभीतेके लिये इस टाइम टेबलमें प्रहरार्द्ध वा यामार्द्ध रखे गये हैं और इस प्रकार आठ यामके सोलह यामार्द्ध वा प्रहरार्द्ध बनाये गये हैं। ब्राह्ममुहूर्त डेढ़ घण्टे रात रहे अर्थात् ४॥ बजेसे ही आरम्भ होता है, इसलिये आर्योंका सबेरा इसी समय होता था। सोलह यामार्द्धमें आजीविकाके लिये एक यामार्द्ध रखा गया है। यह व्यवस्था द्विजमात्रके लिये थी, इससे स्पष्ट है कि लोगोंकी आवश्यकताएं ही कम न थीं, परन्तु राज्य उनका होनेसे उसकी ऐसी व्यवस्था थी कि कमाने खानेका काम बहुत साधारण समझा जाता था और सारा समय धर्माचरण, धर्मोपदेश और धर्मचर्चामें व्यतीत होता था। परन्तु आजकल तो मनुष्य इसी चिन्तामें चूर हो रहे हैं कि

कैसे अपना और अपने आश्रितोंका भरण पोषण करें। जब सारे दिन भी काम करके वे पर्याप्त धन नहीं प्राप्त कर सकते, तो एक यामार्द्ध या डेढ़ घण्टेमें क्या कर सकेंगे यह विचारणीय है। इसलिये पिछले लोगोंने अवस्थाके अनुसार व्यवस्था कर ली और अब वह आह्निक पुराने आदर्शका स्मारक मात्र रह गया है। पुराना आह्निक वा टाइम टेबल इस प्रकार था:—

(१) ब्राह्ममुहूर्त्त में ४॥ बजे उठना और ६ बजे तक एक यामार्द्ध में प्रातःस्मरण, शौचादिमे निवृत्ति, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्या, जप और तर्पण ।

(२) ६ बजेसे ७॥ बजे तक इष्टदेव, गुरु आदिका पूजन ।

(३) ७॥ बजेसे ९ बजे तक वेदाध्ययन ।

(४) ९ बजेसे १०॥ बजे तक आजीविकाके लिये काम ।

(५) १०॥ बजेसे १२ बजे तक स्नान, मध्याह्न सन्ध्या, तर्पण, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजा ।

(६) १२ बजेसे १॥ बजे तक होम और भूत, पितृ, देव, ब्रह्म और नृयज्ञ नामके पञ्च महायज्ञ और भोजन ।

(७) और (८) १॥ बजेसे ४॥ बजे तक इतिहास, पुराण तथा अन्य सांसारिक विषयोंका अध्ययन ।

(९) ४॥ बजेसे ६ बजेतक मित्रोंसे मिलना भेंटना और सायं सन्ध्या ।

(१०) और (११) ६ से ९ बजे तक दिनके पूरे न हुए धर्मोंका पालन, स्त्री, बच्चों आदिसे वार्त्तालाप आदि ।

(१२) से (१६) ९ से ४॥ बजे तक सोना ।

आह्निकोंमें इस दिनचर्याका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कहां मल मूत्र त्याग करना कहां नहीं, दतवन कितनी बड़ी और किस पेड़की होनी चाहिये, धोतीके साथ गमछा क्यों होना चाहिये इत्यादि विषयोंपर बड़ा शास्त्रार्थ भरा पड़ा है। वेदोंके पठन पाठनके साथ ही वैदिक कर्मका भी लोपसा हो गया। पंच महायज्ञोंसे ब्रह्मयज्ञ इसप्रकार निकल जानेसे चार ही रह गये। इनमें देवयज्ञ बलिवैश्वदेव है, जिसमें क्रमशः (१) अग्नि,(२) सोम, (३) अग्नि-सोम, (४) विश्वेदेवा, (५) धन्वन्तरि, (६) कुहु, (७) अनुमति, (८) प्रजापति, (९) द्यावापृथिवी और (१०) अग्नि स्विष्टकृतको बलि रूपसे अन्न दिया जाता था और भूतयज्ञमें प्राणियों वा मनुष्येतर जीवोंको उनका भाग दिया जाता था, जिनमें काकबलि और श्वानबलि भी हैं, बन्द हो गया। केवल कुत्तोंको रोटी देना भर रह गया है और वह भी भोजन करनेके पहले नहीं, पीछे ! पितृयज्ञ पितृश्राद्ध है और नृयज्ञ अतिथिसेवा है। आजकल ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और पितृयज्ञके बदले सन्ध्या पूजा और तर्पण आदि ही रह गये हैं; मनुष्य वा नृयज्ञ भी लुप्तसा हो रहा है। भोजनके समय जो ग्रास आदि उत्सर्ग किये जाते हैं, उनसे भी भूतयज्ञकी आंशिक पूर्त्ति होती है। इसलिये नित्यकर्ममें सन्ध्या, तर्पण और भोजन विधिका ही वर्णन रह जाता है।

सन्ध्या।

सन्ध्या शब्दका व्यवहार हम लोग सूर्यास्त समय या शामके लिये करते हैं, परन्तु उसका अर्थ मेल है और दिन रातकी सन्धि भी सन्ध्या ही कहाती है। प्रातःकाल और सायंकालको तो रात्रिकी दिनसे

और दिनसे रात्रिकी सन्धि सभी समझते हैं, परन्तु मध्याह्न कालमें सूर्यकी अवस्थाकी अत्यन्त उन्नति और अवनतिमें जो सन्धि होती है, उससे मध्याह्न कालकी संज्ञा भी सन्ध्या पड़ गयी है और इस प्रकार तीन सन्ध्याएं—प्रातः, मध्याह्न और सायं होती हैं। इन सन्ध्याओंके समय परमात्माकी जो उपासना की जाती है, उसका नाम भी सन्ध्या है, क्योंकि "सम्यग्ध्यायंति सम्यग्ध्यायते वा परंब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या" अर्थात् जिसमें योगी भली भांति परंब्रह्मका ध्यान करते हैं या जिसमें परंब्रह्मका भली भांति ध्यान किया जाय, वह सन्ध्या है। सन्ध्याके समय परमात्माकी उपासना सन्ध्योपासन या सन्ध्योपासना भी कहाती है। जीवात्माका परमात्मासे मेल सन्ध्योपासनद्वारा ही होता है, इसलिये भी इसे सन्ध्या कहना चाहिये।

त्रिकाल सन्ध्या।

सन्ध्या द्विजोंका नित्य कर्त्तव्य है और इसी लिये कहा गया है कि रोज रोज सन्ध्या करे (अहरहः सन्ध्यामुपासीत)। मनुस्मृतिमें तो सवेरे शाम सन्ध्या न करनेवालेको आर्योंकी श्रेणीसे निकाल देनेकी बात भी कही गयी है। कहा है:—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमां।
स शूद्र इव बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

जो प्रातःकाल पूर्वकी ओर मुंह करके और सायंकाल पश्चिमकी ओर मुंह करके सन्ध्योपासना नहीं करता, वह सब द्विज कर्मोंसे शूद्रके समान बहिष्कारयोग्य है। इससे जान पड़ता है कि सन्ध्या दो बार करनी चाहिये, पर कई ऐसे वेद मंत्र भी हैं जिनमें तीन बार भी

उपासनाकी चर्चा है और उपनिषदोंमें तो इसी आशयका आदेश अनेक स्थलोंपर है। त्रिकाल सन्ध्योपासनके पक्षमें ये वेद मंत्र हैं :—

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यं दिने दिवः ।

मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवास्तोमासो अवृत्सत ॥ ऋग्वेद ८।१।२९॥

हे सर्वव्यापक परमेश्वर सूर्योदयके समय, मध्य दिनमें और दिनके अन्तमें सायंकाल भी मेरी प्रार्थना तुम्हारे लिये ही होती है। अर्थात्—तीन वार मैं सन्ध्योपासन करता हूं ।

यदद्य सूर्य उद्यति प्रिय क्षत्रा ऋतं दध ।

यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥ऋ० ८।२७।१९॥

हे क्षत्रियो ! सूर्यके उदयके समय वा जागनेके समय, सूर्यके अस्तके समय और दिनके मध्यमें सर्वज्ञ परमेश्वरके मंत्रकी धारणा करोगे, तो आजसे ही यथार्थ संकल्पके धारण करनेवाले बन जाओगे।

यदद्य सूर उदिते यन्मध्यं दिन आतुचि ।

वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥ऋ० ८।२७।२१॥

यदि तुम सूर्यके उदयके समय, मध्य दिनके समय तथा सन्ध्याके समय सर्वज्ञ परमेश्वरका वन्दनीय स्तोत्र, मनन, चिन्तन और धारण करोगे तो आज ही श्रेष्ठ बन जाओगे ।

ये स्तोत्र और कुछ नहीं, सन्ध्याके ही मंत्र हैं। इसलिये आह्निककी व्यवस्थाके सिवा वैदिक मंत्रोंसे भी तीन बार सन्ध्या करनेकी ही विधिका पता लगता है। पर यहां यह प्रश्न हो सकता है कि फिर मनुस्मृतिमें दो ही वार सन्ध्या करनेपर क्यों जोर दिया गया है। इसका उत्तर यह है कि उस समय द्विजोंमें सन्ध्याकी उपेक्षा होने लगी थी, इस लिये

मनुस्मृतिके समयमें सोचा गया कि तीन न सही, दो ही वार सन्ध्या करें, तो बहुत है । इसीसे कहा गया कि जो द्विज, दो वार सन्ध्या न करे वह वैदिक अनुष्ठानोंमें न बैठने पावे । परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि संध्या दो ही वार करनी चाहिये । यही नहीं, तैत्तिरीय आरण्यकमें आचमनके मंत्र जब तीनो संध्याओंके लिये अलग अलग लिखे हैं और सायणाचार्यने अपने भाष्यमें यह बात स्पष्ट कह दी है, तब तीन वार सन्ध्या करनी चाहिये या दो वार इसका निपटारा सहजमें ही हो जाता है । इसके सिवा याज्ञवल्क्यके इस वचनसे कि "दिवा वा यदि वा रात्रौ यद्ा ज्ञान कृतं भवेत् । त्रिकाल सन्ध्या करणात्तत्सर्वं विप्रणश्यति ॥" और व्यासकी इस उक्तिसे कि "या सन्ध्या सा च गायत्री त्रिधा भूत्त्वा व्यवस्थिता । पूर्वा भावे तु गायत्री सावित्री मध्यमा स्मृता ॥ या भवेत् पश्चिमा सन्ध्या सा च देवी सरस्वती ॥" स्पष्ट होता है कि इन स्मृतिकारोंको त्रिकाल सन्ध्या ही इष्ट है । परन्तु आजकल जब एक वार भी सन्ध्या करना भार हो रहा है, तब दो वार करनी चाहिये या तीन वार इसकी चर्चा ही व्यर्थ है । समय समयपर लोगोंने इस टाइमटेबलमें सुधार चाहे लिखकर न किये हों, पर व्यवहारमें किये हैं और इसका पता लगता है कि भोजनके बाद किसी समय मध्याह्न सन्ध्या होने लगी थी । यह अनुचित नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मध्याह्न सन्ध्याके एक आचमन मंत्रमें उच्छिष्ट भोजनकी निष्कृतिकी चर्चा भी है । इसके बाद प्रातःसन्ध्याके साथ ही मध्याह्न सन्ध्या कर लेना उचित समझा गया और इस प्रकार कहनेके लिये तो तीन वार, पर वास्तवमें दो ही वार सन्ध्योपसना होने लगी । अब एक ही वार सन्ध्योपासन रह गया है ।

सन्ध्याके समय ।

तीनो सन्ध्याओंका समय तो अलग अलग होता ही है, परन्तु प्रातः सन्ध्या सूर्योदयके पहले आरम्भ करनी चाहिये और उषाकालमें सूर्याञ्जलि देनी चाहिये। इसी प्रकार सायं सन्ध्या सूर्यास्तसे पहले आरम्भ और समाप्त कर देनी चाहिये। योगि याज्ञवल्क्यने कहा है कि "सन्धौ सन्ध्यामुपासीत नास्तगे नोद्गते रवौ। ह्रास वृद्धि तु सततं दिवसानां यथाक्रमं" ॥ अर्थात् सन्धिमें सन्ध्या करना चाहिये और सूर्योदय या सूर्यास्तके बाद न करनी चाहिये। दिनोंके घटने बढ़नेका क्रम बराबर समझते रहना चाहिये। दोपहरको मध्याह्न सन्ध्या करनी चाहिये इस विषयमें तो कुछ कहनेका ही प्रयोजन नहीं रह गया।

संध्याके मंत्र ।

अब विचारना है कि सन्ध्याके मंत्र कौनसे हैं। सन्ध्या नामसे जो ईश्वरोपासना प्रसिद्ध है, वह वैदिक ही है। इसलिये सन्ध्याके मंत्र भी वेदोंके ही मंत्र होने चाहिये। परन्तु यदि कोई भाषाद्वारा सन्ध्या करे तो भी कुछ हर्ज नहीं है। वेदोंसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिये वैदिक मंत्रोंसे सन्ध्या करनेकी परिपाटी प्रचलित रहना परमावश्यक है, पर वैदिक मंत्रोंका शुद्ध उच्चारण जिनसे नहीं बन पड़ता, उनसे वेद मंत्रों द्वारा सन्ध्या कराना निष्प्रयोजनीय है। सन्ध्याकी जो पोथियां मिलती हैं, उनमें वैदिक मंत्रोंके सिवा कुछ पौराणिक और तांत्रिक बातें भी हैं। तांत्रिक बातें कम ही हैं, क्योंकि तांत्रिकोंने अपने सिद्धान्त वैदिकोंकी अपेक्षा अधिकतर गुप्त रखे है, पर पौराणिक बातें स्पष्ट दिख रही हैं। किन्तु हमारी सन्ध्या वैदिक ही रहनी चाहिये, इस लिये प्रश्न होता है कि

वेद किसे कहते हैं ?

वेद ज्ञानका नाम है और इसलिये ज्ञानके प्राचीनतम भाण्डारका नाम भी वेद है। साधारणतः वेद चार कहे जाते हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। परन्तु वेदकी प्राचीन संज्ञा त्रयी है और त्रयीसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इस वेदत्रयीका ही बोध होता है। यह भी प्राचीन परम्परा प्रसिद्ध है कि महत्त्व और प्रामाण्यकी दृष्टिसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदसे अथर्ववेदकी तुलना नहीं हो सकती। कौटिल्यका कहना है "सामर्ग्यजुर्वेदस्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः।" अर्थात् सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद ये तीनो त्रयी तथा अथर्ववेद और इतिहासवेद सब मिलकर वेद कहाते हैं। प्रत्येक वेदके दो भाग सनातन धर्मानुयायी मानते हैं एक मंत्र वा संहिता और दूसरा ब्राह्मण। परन्तु और लोग ब्राह्मणको वेद नहीं कहते; उनके मतसे संहिता मात्र ही वेद है। संहिताओंकी भी शाखाएं हैं। प्राचीनकालमें जिस समय वेदोंका पठन पाठन नित्यकर्म था और आचार्योंके गुरुकुल थे, उस समय पाठभेद अथवा अन्य कारणोंसे भिन्न भिन्न गुरुकुलों वा विद्यापीठों अथवा विश्वविद्यालयोंकी पाठविधियोंमें कुछ भिन्नता देखी जाती थी। आज जैसे बड़े विश्वविद्यालयोंके नाम ग्रैजुएट अपनी उपाधिके पीछे लगाते हैं, उसी प्रकार उस समय विश्वविद्यालय या आचार्य बतानेके लिये शाखा शब्दका प्रयोग होता था। आज वेदोंका पठनपाठन बन्द है सही, परन्तु परम्परासे कौन किस आचार्यका अनुयायी है यह बतानेके लिये आज भी वेदके साथ ही शाखाका उच्चारण किया जाता है।

वेदोंके भेद।

शाखा भेदसे ऋग्वेदकी दो संहिताएं हैं शाकल और वाष्कल। यजुर्वेद दो प्रकारका है एक कृष्ण यजुर्वेद और दूसरा शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेदकी संहिताका नाम तैत्तिरीय और शुक्ल यजुर्वेदकी संहिताका वाजसनेयी है। कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाएं काठक और कपिष्ठल हैं। मैत्रायणी भी उसकी शाखा है। शुक्ल यजुर्वेदकी दो ही शाखाएं इस समय पायी जाती हैं एक कण्व और दूसरी माध्यन्दिन। उत्तर भारतमें माध्यन्दिन शाखाके ही अनुयायी हैं। सामवेदकी तीन शाखाएं कौथुमी, जैमिनीय, और राणायनीय प्रसिद्ध हैं। पहलीके अनुयायी उत्तर भारत और गुजरातमें, दूसरीके कर्नाटकमें और तीसरीके महाराष्ट्रमें हैं। अथर्ववेदकी दो शाखाएं उपलब्ध हैं शौनक और पैप्पलाद। पैप्पलाद काश्मीरियोंमें प्रचलित हैं। ऋग्वेदका विभाग मण्डलों, अनुवाकों और सूक्तोंमें हुआ है। एक सूक्तमें एक वा अधिक मन्त्र रहते हैं। इस वेदमें कुल १० मण्डल हैं। ऋग्वेदके मन्त्र ऋक् वा ऋचा, यजुर्वेदके यजुष् और सामवेदके साम कहाते हैं। यजुर्वेदका विभाग अध्यायोंमें और अथर्ववेदका काण्डोंमें किया गया है। शु० यजुर्वेदमें ४० अध्याय और २६०० मन्त्र तथा अथर्ववेदमें २० कांड और ६००० मन्त्र हैं। ऋग्वेदका ब्राह्मण ऐतरेय, कृष्ण यजुर्वेदका तैत्तिरीय, शुक्ल यजुर्वेदका शतपथ, और अथर्ववेदका गोपथ प्रसिद्ध है। सामवेदके दो ब्राह्मण हैं पञ्चविंश और षड्विंश। पञ्चविंश ही ताण्ड्य महाब्राह्मण नामसे विख्यात है। षड्विंश ब्राह्मणमें ही दैवत ब्राह्मण भी है। इन्ही ब्राह्मण ग्रन्थोंके ही अन्तर्गत आरण्यक और एक

आधको छोड़कर सब उपनिषदें हैं। उपनिषदें ब्राह्मणके अन्तमें होनेसे वेदका शिरोभाग अथवा वेदान्त भी कहाती हैं। ब्राह्मणोंमें मन्त्रोंके अर्थों-के सिवा बहुत करके उनका प्रयोग वा विनियोग बताया गया है। *

सूत्र, वेदांग और उपवेद।

संहिताओं और ब्राह्मणोंके सिवा वैदिक आचार विचारसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतसे सूत्र ग्रन्थ भी हैं। ये तीन प्रकारके हैं श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्रके अनुसार वैदिक यज्ञयागादि होते हैं। इसलिये वेदशाखाके साथ साथ श्रौतसूत्र जाननेका भी प्रयोजन होता है। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखाके लिये कात्यायन और सामवेदकी कौथुमी शाखाके लिये गोभिल श्रौतसूत्र हैं। गृह्यसूत्रोंसे ही सन्ध्या निकली है। गृह्यसूत्रोंमें जन्मसे मरणपर्यन्तके गृह्यसंस्कारोंका वर्णन है और धर्मसूत्रोंमें धर्मशास्त्र है। श्रौतसूत्रोंके बाद वेदांगोंका नम्बर है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष ये वेदोंके अङ्ग कहाते हैं और वेदोंको इन अङ्गों सहित पढ़नेवाला ही सांगवेदपाठी कहाता है। इनके विना वेदपाठ अधूरा ही रहता है।

जैसे ऊपर चार वेद गिनाये हैं, वैसे ही चार उपवेद भी हैं, यद्यपि इनसे वेदोंका सम्बन्ध बहुत कम है। ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेदका गान्धर्ववेद और अथर्ववेदका स्थापत्य वेद (गृह निर्माण शास्त्र) वा तन्त्रवेद।† स्थापत्यवेदके लुप्त हो जानेसे तन्त्र अथर्व-

* जप होमार्चनं यस्य देवता प्रीतिदं भवेत्। उच्चारान्मन्त्र संज्ञस्त-द्विनियोगि च ब्राह्मणम्॥ शुक्रनीतिसार ४। २७१

† ऋग्यजुः सामचाथर्वा वेदा आयुर्धनुःक्रमात्। गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदा प्रकीर्त्तिताः॥ शु० सा० ४। १६७

वेदका उपवेद हो गया या यह पहलेसे ही चला आता है यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु जैसे गान्धर्ववेद सामवेदका उपवेद होनेके लिये सर्वथा योग्य है, वैसे ही तन्त्र भी अथर्ववेदका उपवेद होने योग्य है, क्योंकि दोनोमें झाड़ फूंक, यन्त्र मन्त्र, जादू आदिका वर्णन है।

संध्या एक है या अनेक ?

अब यह प्रश्न उठता है कि सन्ध्या एक है या अनेक। इसका कारण यह है कि सन्ध्याकी जो पोथियां पायी जाती हैं, वे ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी सन्ध्या नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सच पूछा जाय तो सन्ध्या एक ही है, परन्तु जैसे एक मूल वेदके अनेक वेद हो गये और शाखा भेदसे एक ही वेदकी दो शाखाओंके लोगोंके आचारमें भिन्नता आ गयी, उसी प्रकार प्रत्येक वेदाध्यायीकी एक प्रकारकी स्वतन्त्र परिपाटी बन गयी, जो कुछ अंशोंमें अन्य वेदाध्यायीकी परिपाटीसे भिन्न होती थी। सन्ध्यामें भी यही बात देखी जाती है। कोई एक मंत्र अधिक पढ़ता है तो कोई कम और कहीं क्रम भी आगे पीछे हो गया है। मंत्र सब पुस्तकोंमें प्रायः वेही हैं। अब वेदका अध्ययन अध्यापन बन्द हो जानेसे इस प्रकार-की सन्ध्याओंका भेद करना सर्वथा निरर्थक है। कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीन भागोंमें वेदत्रयीका विभाग होनेसे उपासनासे यजुर्वेदका सम्बन्ध लगाया गया है और सन्ध्या भी उपासनाका विषय है तथा उसमें यजुर्वेदके मंत्र ही अधिक हैं, इस लिये यजुर्वेदी सन्ध्या ही यहां आधार बनायी गयी है। इसमें संहिताओं और ब्राह्मणोंकी ही नहीं, कहीं कहीं पुराणोंकी बातें भी आ गयी हैं। इच्छानुसार सन्ध्योपासक इन्हें निकाल सकता है।

सन्ध्याका फल।

सन्ध्या करनेके लिये ही नहीं, प्रत्येक शुभाशुभ कार्यके लिये हमारे यहां इस बातका विचार किया गया है कि किस मुंह बैठकर वह किया जाय। मनुस्मृतिके जिस श्लोकको चर्चा की गयी है, उसमें प्रातः सन्ध्या पूर्वाभिमुख और सायं सन्ध्या पश्चिमाभिमुख होकर करनेको कहा गया है। हिन्दुओंके सभी धार्मिक कार्य पितृश्राद्धादि छोड़कर पूर्वाभिमुख होकर ही किये जाते हैं। इसका कारण है कि यह देवताओंकी वा प्रकाशकी दिशा है और जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे बाहरी अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार परमात्माके ज्ञानके प्रकाशसे भीतरी अन्धकार वा अज्ञान वा अविद्याका नाश होता है। इस लिये भीतरी अन्धकार दूर करनेके लिये भी सूर्याभिमुख होकर ही सन्ध्या करनी चाहिये। सन्ध्या करनेका फल आत्मोन्नति तो है ही; परन्तु उससे दीर्घ जीवनकी भी प्राप्ति होती है। आगेके प्रकरणसे पता लगेगा कि इस सन्ध्योपासनके दो भाग हैं। पहलेके अनुष्ठानका फल आत्मशुद्धि द्वारा आत्मोन्नति तथा दीर्घ जीवन है और दूसरेमें परमात्माके पास आत्माको पहुंचानेके लिये परब्रह्मकी उपासना है। पहले अनुष्ठानमे ही देवताओंने मृत्युको जीत लिया था। परमात्मामें जीवात्माके मेलके लिये आत्मशुद्धि अत्यन्त आवश्यक है यह कहना ही व्यर्थ है।

सन्ध्या क्यों करनी चाहिये?

इस प्रश्नका उत्तर जैसा सहज लोग समझते हैं, वैसा सहज नहीं है। सन्ध्या करनेकी आज्ञा मनुस्मृति आदिमें है और यह द्विज मात्रका कर्त्तव्य भी बताया गया है, इस लिये सबको सन्ध्या करनी चाहिये।

यह उत्तर है सही, परन्तु सन्तोषजनक नहीं है ; क्योंकि आजकल किसी ग्रन्थमें होने मात्रसे ही कोई कर्म कर्त्तव्य नहीं मान लिया जा सकता। सन्ध्याके मंत्रों और इनके अनुष्ठानकी विधियोंसे जाना जाता है कि इनका अभिप्राय शरीर और आत्माकी उन्नति है और सन्ध्याके संकल्पमें तो स्पष्ट ही संचित बुराई या पापके नाश अथवा ब्रह्मलोक (रुद्रलोक वा विष्णुलोक) की प्राप्ति ही सन्ध्याका उद्देश्य बनाया गया है। इससे सिद्ध है कि सन्ध्या नित्य और साथ ही काम्य कर्म भी है। चन्द्रोदयाह्निकमें भी कहा है, "सन्ध्योपासन काम्यं।" इसपर यह प्रश्न होना साहजिक है कि यदि वास्तवमें सन्ध्या काम्यकर्म है तो वह नित्य कर्त्तव्यमें क्यों रखी जाय? कामना करना या न करना मनुष्यकी इच्छाके अधीन है। जो कामना नहीं रखता, वह कामना करनेके लिये क्यों बाध्य किया जाय? प्रश्न ठीक है, परन्तु मनुष्यजन्मकी सार्थकता ऐसी कामनाके बिना नहीं हो सकती, क्योंकि फिर मनुष्य और इतर प्राणियोंमें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। इसलिये कामना करनेके लिये वह बाध्य किया जाता है। मनुष्य आत्मोन्नतिमें दत्तचित्त हो यही मनुष्य जीवनका सार है और यही सन्ध्याको आवश्यक कर्त्तव्यकर्म बनानेका रहस्य है। नित्य काम्यकी यह परिभाषा पण्डितोंकी परिभाषासे सम्भव है, कुछ भिन्न हो।

सन्ध्या-भाष्य ।
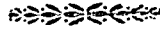
सन्ध्या कृत्य वैदिक है यह पहले कह आये हैं। वेदोंकी जननी गायत्री छन्द है और गायत्रीका मूल सप्त व्याहृतियां और इनका सार तीन मुख्य वा महा व्याहृतियां हैं और इनका मूल ओंकार वा प्रणव है। ओंकार वा प्रणवोपासना परंब्रह्मकी उपासना है। परन्तु वह सहज नहीं है, इसलिये सातो व्याहृतियों भूः, भुवः, स्वः, महः जनः तपः और सत्यम् तथा गायत्री मन्त्र "तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" के पहले ओंकारका प्रयोग करके सन्ध्याके मन्त्र बनाये गये हैं। इनके सिवा और मंत्र भी हैं, पर मुख्य ये ही हैं।

आचमन ।

सन्ध्याका आरम्भ दो आचमनोंसे होता है। आचमनका अर्थ है क्रमशः तीन बार थोड़ा थोड़ा जलपान करना जो हृदय तक पहुंच जाय। जिसमें जल न्यूनाधिक न हो इसलिये लोग "आचमनी" नामकी एक प्रकारकी चम्मच रखते हैं। सन्ध्याके आरम्भमें ६ बार इसीसे आचमन करना होता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आचमन करनेके पहले और बाद हाथ धोना चाहिये। आर्योंकी प्रत्येक पूजा वा धार्मिक कृत्यके पहले आचमन करनेकी विधि है। इसका कारण क्या है? स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी कहते हैं कि गलेमें कफ अटककर मन्त्रोचारणमें व्याघात न उपस्थित करे

इसलिये आचमनसे गला साफ करना चाहिये। इसपर सनातनियों-का यह प्रश्न है कि जो गलेमें कफ न अटका हो, तो इसका उत्तर यह दिया गया कि तब आचमन न करना चाहिये। सनातनी कहते हैं कि सन्ध्योपासनकी विधिमें यथेच्छाचार नहीं चल सकता। परन्तु फिर आचमनका क्या प्रयोजन है यह ये भी नहीं बताते। यह निश्चय है कि जिन्होंने आचमनको सन्ध्याकी विधिका अङ्ग बनाया है, वे यों ही व्यर्थकी विधि बनानेवाले न थे। वास्तवमें वे अनुभवी थे और अनुभवने उन्हें सन्ध्याकी विधिमें यथास्थान आचमनोंकी व्यवस्था करनेके लिये बाध्य किया था। मन्त्रोंके उच्चारण, जप अथवा प्राणवायुके निरोधसे शरीरमें एक प्रकारकी बिजली उत्पन्न होती है और उससे मुंह और गला सूख जाता है। इसलिये सन्ध्याके आरम्भ और अन्तमें ही नहीं प्राणायाम और अघमर्षणके बाद भी आचमनकी व्यवस्था है। जब जब शरीरमें किसी क्रिया वा यन्त्र द्वारा बिजलीका संचार किया जाता है, तब तब उसके आरम्भ और अन्तमें जैसे जल पीनेका नियम है, वैसे ही प्राणवायु रोकने अथवा प्रश्वास निश्वासकी क्रियाके पहले और पीछे जल पीनेकी विधि है। सन्ध्याके मन्त्रोच्चारणसे भी स्वल्पमात्रा-में ही क्यों न सही, उष्मा उत्पन्न होती है और जिसमें वह प्रकृतिको बिगाड़ न दे, इसलिये आचमनका नियम बनाया गया है। कितने ही व्याख्यानदाता व्याख्यानके बीच बीचमें इसीलिये थोड़ा थोड़ा पानी पीते रहते हैं कि कहीं मुंह और गला न सूख जाय। इस पर यह प्रश्न हो सकता है कि तो फिर सन्ध्याके आरम्भमें एक ग्लास जल पीकर बार बार आचमन करनेका बखेड़ा ही क्यों न तय

कर दिया जाय। इसका उत्तर यह है कि आचमनका उद्देश्य इससे सिद्ध होनेके बदले भ्रष्ट होगा, क्योंकि खाली पेट जल पीनेसे थोड़ी ही देर बाद मूत्र रूपसे उसे बाहर निकालनेकी आवश्यकता होगी। इससे सन्ध्योपासनमें विक्षेप होगा और फिर खुश्की रोकनेका प्रयोजन ज्योंका त्यों बना रहेगा। आचमनका जल मूत्रनालिकातक पहुंच ही नहीं सकता, क्योंकि वह हृदयतक ही पहुंचना चाहिये।

परमात्माका स्मरण।

अनन्तर बांयें हाथमें जल लेकर तीन कुशाओं या दहिने हाथकी उंगलियोंसे ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः तथा ॐ भूर्भुवः स्वः कहकर मार्ज्जन या अभिषेचन करना चाहिये। यह वैदिक क्रिया है।

इसके बाद "ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः" कहकर परमात्माका स्मरण करे और "पुण्डरीकाक्षाय नमः" कहकर नमस्कार करे। यह पौराणिक क्रिया हुई। जो पौराणिक अंश सन्ध्यामें नहीं देखना चाहते, उनके लिये इसकी आवश्यकता नहीं है।

अङ्गस्पर्श।

तत्पश्चात् अङ्गस्पर्श है। "ॐ वाक्"* कहकर वाणी वा जिह्वा या ओठोंका स्पर्श करे, "ॐ प्राणः प्राणः" कहकर दोनो नथुनोंका "ॐ

---

* आर्य समाजी सन्ध्या पद्धतियोंमें "ॐ वाक्" के बदले ॐ वाक् वाक् लिखा रहता है। न जाने आर्यसमाजी भाई दूसरोंको लीक पीटने वाला बताकर आप भी क्यों लीक पीटते ही देखे जाते हैं। ऐसा न होता तो दूसरा "वाक्" उनकी सन्ध्योपासन विधिसे न जाने कब निकाल दिया जाता। परन्तु यह देख और आश्चर्य होता है कि श्री० दा० सातवलेकर जो

चक्षुः चक्षुः" कहकर दोनो आंखोंका, "ॐ श्रोत्रम् श्रोत्रम्" कहकर दोनो कानोंका, "ॐ नाभिः" कहकर नाभिका, "ॐ हृदयम्" कहकर हृदय-का "ॐ मूर्द्धा" कहकर सिरका और "ॐ यशोबलम्" कहकर दोनो बाहोंका स्पर्श करे। इन अङ्गोंको स्पर्श करनेका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके खो जानेकी आशङ्कासे हम इन्हें टटोलते हैं, बल्कि यह है कि, हे परमात्मा हमारी वाणी, नेत्र, कान, नाभि, हृदय, शिर तथा बाहुओंको क्रियाशील बनाये रख, जिससे जिन कार्योंके लिये इन्हें तूने बनाया है, वे सुसम्पन्न होते रहें। वाणी सुन्दर वचन बोलने, आज्ञा करने और सदुपदेश देनेके लिये है और यह काम वह अच्छी तरह करती रहे। इसी प्रकार नाकका काम श्वास लेने और श्वास छोड़नेके सिवा सुगन्ध और दुर्गन्धका विवेचन करना है। ये काम वह या दोनो नथुने यथा-रीति करते रहें, इसलिये "प्राणः प्राणः" कहकर इनका स्पर्श किया जाता है और इस प्रकार परमात्मासे प्रार्थना की जाती है कि इन्हें कार्यके योग्य बनाये रख। आंखका काम देखना है और देखकर अच्छे बुरेका

जैसे विचारवान् भी "सूक्ष्म और स्थूल वक्तृत्वशक्ति" अर्थ करके इसका समर्थन ही करते हैं। उन्हें सोचना उचित था कि सूक्ष्म और स्थूल अर्थ फिर सबके साथ लगाने पड़ेंगे और "प्राणः प्राणः" न कहकर "प्राणः प्राणः प्राणः प्राणः" कहना पड़ेगा और ऐसा करना ठीक भी होगा, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म भेदसे प्राण दो प्रकारके हैं। इसी प्रकार जहां एक है वहां दो और जहां दो हैं, वहां चार करने पड़ेंगे। आर्य समाजी सन्ध्यापद्धतिमें एक भूल आश्चर्यजनक है और वह वहां है जहां अङ्गों और इन्द्रियोंमें भेद करके नाभि, कण्ठ आदि भी इन्द्रिय बना डाले गये हैं!

ज्ञान करना है। कानका काम सुनना है और वह मधुर और कर्कशका अन्तर जाननेमें समर्थ है। इन इन्द्रियोंके स्पर्श द्वारा परमात्मासे प्रार्थना की जाती है कि हे परब्रह्म तूने इन्हें जिन कामोंके लिये बनाया है उन्हें करनेके लिये सदा समर्थ रख। नाभिका सम्बन्ध समान वायुसे है। प्राणवायु नाकमें, अपान मलस्थानमें, व्यान वाणीमें, उदान कण्ठमें और समान नाभिमें रहता है। समान वायु यथास्थान रहकर काम करे और शरीरमें किसी प्रकारकी विषमता न आने दे, इसी लिये नाभि स्पर्श करके परमात्मासे प्रार्थना की जाती है। हृदयकी दृढ़ता दीर्घ आयुष्यको देने-वाली ही नहीं होती, बल्कि दुर्बल हृदय मनुष्य अकाल कालका ग्रास होता है। इस लिये हृदयको स्पर्शकर परमात्मासे प्रार्थना की जाती है कि वह हमें दीर्घजीवी बनावे और हमारे हृदयमें ऐसी दृढ़ता उत्पन्न करे कि हम सत्यसंकल्प हों—जो निश्चय करें, उसे करके ही छोड़ें। मूर्द्धा या सिर सब अङ्गोंका राजा है, क्योंकि सिर या मस्तिष्क या दिमाग ठीक रहनेसे ही मनुष्य कुछ अच्छा काम कर सकता है। इसी भांति बांह बाजू यश और बलके चिन्ह हैं, क्योंकि किसीको युद्ध करनेके लिये ललकारनेके समय दोनो बाहु द्वारा ताल ठोंकते हैं और इन्हींके सुकार्यसे संसारमें यश होता है, इसी लिये इन्हें यशोबल भी कहते हैं। सिर और इन्हें स्पर्श करके परमात्मासे इन्हें सुरक्षित रखनेकी प्रार्थना की जाती है।

इस भांति अङ्गस्पर्श करके सन्ध्याका आरम्भ किया जाता है। पहले कह आये है कि प्रणव ही वेदका मूल है। इसे एकाक्षर ब्रह्म भी कहते हैं। चारो वेदोंके वक्ता चतुर्मुख ब्रह्मा माने जाते हैं और इस लिये

प्रणवके द्रष्टा ऋषि भी ब्रह्मा ही हुए और प्रणव परमात्माकी उपासनाका मूल है, इस लिये प्रणवका देवता भी परमात्मा ही है, क्योंकि प्रणवके द्वारा उसकी उपासना की जाती है और परमात्माकी उपासनाका छन्द गायत्री है। इसलिये सन्ध्यारम्भमें इन बातोंका ध्यान रखनेके अभिप्रायसे दाहने हाथमें जल लेकर "ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः सन्ध्या कर्मारम्भे विनियोगः" पढ़कर पृथिवीपर छोड़ते हैं। यह वैदिक पद्धति है।

ऋषि, देवता और छन्द।

वेद मंत्रोंका प्रयोग जब किसी कामके लिये किया जाता है, तब उसके पहले ऋषि, देवता और छन्दके स्मरणके साथ ही इसकी भी सूचना देने अथवा प्रतिज्ञा वा संकल्प करनेका नियम है कि हम इसका प्रयोग किस लिये करते हैं। इस सूचना वा संकल्पका नाम विनियोग है। ऐसा समझा जाता है कि जो ऋषि जिन मंत्रोंके कहे जाते हैं, वे उनके द्रष्टा हैं अर्थात् उन मंत्रोंका ज्ञान उनके हृदयमें उत्पन्न हुआ था। इसी लिये ये मंत्रद्रष्टा ऋषि भी कहाते हैं। कुछ लोगोंकी समझ है कि इन ऋषियोंने उन मंत्रोंका प्रयोग किया था, इस लिये उनके नामसे वे मंत्र चले आ रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृतज्ञोंका मत है कि जिस ऋषिने जो मंत्र रचा, उसका वही द्रष्टा माना जाने लगा। वेदोंको अपौरुषेय माननेवाले हमारे देशके वैदिक विद्वान् पाश्चात्य संस्कृतज्ञोंके इस मतसे सहमत नहीं हैं, क्योंकि इससे वेदोंके कर्त्ता मनुष्य ही माने जायंगे। हमारे मतसे पहली कल्पना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। किसी मंत्रका ज्ञान किसी ऋषिके हृदयमें उत्पन्न होना और उसका उसे छन्द विशेषमें

प्रकट करना असम्भव नहीं है। जो हो, इन वैदिक ऋषियोंने हमारे लिये जो ज्ञानभाण्डार संग्रह कर छोड़ा है, उसके लिये हमें उनके कृतज्ञ होना चाहिये और इसी कृतज्ञताज्ञापनके लिये आज हम उनका स्मरण करते हैं।

जिन मंत्रोंका प्रयोग सन्ध्यामें किया जाता है, उनका सम्बन्ध किसी देवतासे रहता है। इस लिये स्तुति वा स्मरण करते समय यह जानना आवश्यक है कि हम किस देवताकी स्तुति करते हैं। सन्ध्याको जीवात्मासे परमात्माका मेल हम पहले बता चुके हैं, इस लिये यहां प्रश्न हो सकता है कि जब सन्ध्या परब्रह्मकी उपासना है, तब अन्य देवताओंकी स्तुतिका उसमें क्या प्रयोजन है? इसका उत्तर यह है कि सन्ध्या परब्रह्मकी उपासना ही है, परन्तु उसमें जिन देवताओंकी स्तुति देखी जाती है, वे परमेश्वरके विशेष गुण व्यक्त करते हैं और इस लिये उनके नामसे परमात्माके उन गुणोंकी चर्चा करके उसका स्मरण किया जाता है। देवताओंका स्मरण करनेका यही रहस्य है।

वैदिक मंत्र अनेक छन्दोंमें पाये जाते हैं। परन्तु उनमें ये मुख्य हैं :—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती। थोड़े हेरफेरसे इनमें प्रत्येक छन्द कई प्रकारका होता है और इस प्रकार छन्दोंकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। गायत्रीसे ही वैदिक छन्दोंका हिसाब लगाया जाता है, इसलिये गायत्री छन्द वेद वा छन्दोंकी माता कहाता है। गायत्री २४ अक्षरका छन्द है। इन २४ अक्षरोंपर क्रमशः चार चार अक्षर बढ़ानेसे और सभी छन्द बन जाते हैं अर्थात् चार अक्षर गायत्रीमें बढ़ें तो वह उष्णिक् और उष्णिक्में चार बढ़ें तो

अनुष्टुप्, अनुष्टुप्में चार अक्षर बढ़ें तो बृहती और बृहतीमें चार अक्षर बढ़ें तो पंक्ति, पंक्तिमें चार अक्षर बढ़ें तो त्रिष्टुप् और त्रिष्टुप्में चार अक्षर बढ़ें तो वह जगती छन्द हो जाय। परन्तु आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्च्ची और ब्राह्मी नामसे प्रत्येक छन्द आठ प्रकारका होता है। नीचेके कोष्ठकसे जान पड़ेगा कि कौन छन्द कितने अक्षरोंका होता है :—

	छन्द	गा०	उ०	अ०	बृ०	प०	त्रि०	ज०
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्च्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

आसन।

इसके बाद ही आसनोंके तीन मन्त्र पढ़े जाते हैं, जिनमें पहला तो पृथ्वीके लिये, दूसरा कूर्मके लिये और तीसरा अपनेको आसन

देनेका है। किसी समयमें ये मन्त्र पढ़कर कुश रख दिये जाते होंगे, परन्तु अब तो जल ही छोड़ा जाता है। ठीक ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें पौराणिक कल्पना ही है या और भी कुछ, परन्तु ये पौराणिकसी ही जान पड़ती हैं। पहले मन्त्रमें आसन देनेके लिये यह कल्पना की गयी है कि पृथिवीका प्रथम द्रष्टा वा ऋषि मेरुपृष्ठ है और देवता कूर्म है तथा छन्द सुतल है। दूसरेमें कूर्मका भी ऋषि मेरुपृष्ठ और देवता भी कूर्म ही है, पर छन्द अनुष्टुप् है। तीसरेमें शरीरका ऋषि आत्मा और देवता सत्यपुरुष तथा छन्द प्रकृति है। यहां ऋषियों, देवताओं और छन्दोंका जो प्रयोग हुआ है, उससे यह न समझना चाहिये कि ये कोई ऋषि, देवता वा छन्द थे; परन्तु विशेष अर्थोंमें ये प्रयुक्त हुए हैं। पृथ्वी जब समुद्रगर्भसे बाहर निकली, तब उसे पहले पहल देखनेवाला कोई मनुष्य नहीं हो सकता। मेरु वा सुमेरु ही संसारमें सबसे ऊंचा भूभाग है, इसलिये मेरुका सबसे पहले निकलना स्वाभाविक है और इससे मेरुपृष्ठ ही पृथ्वीका ऋषि वा द्रष्टा हो सकता है। इस पृथ्वीका देवता कूर्म है, क्योंकि आरम्भमें कूर्म या कछुएने ही सृष्टि की थी। इसलिये वही देवता हुआ। सुतल छन्द इसलिये कहा गया कि यह सबसे निचला भूभाग है। इस प्रकार कूर्मका स्मरण किया गया और इसका भी ऋषि वा प्रथम द्रष्टा मेरु-पृष्ठ ही था, क्योंकि सृष्टिका आरम्भ पृथ्वीहीसे होता है। कूर्म देवता तो पिछले दिनों पुराणोंमें विष्णुके अवतार प्रसिद्ध हुए हैं। यह कल्पना है कि कूर्मके ऊपर पृथिवी है और इसका कारण यही है कि कूर्म सृष्टिकर्त्ता है। तैत्तिरीय आरण्यकके प्रथम प्रपाठकके २३ वें

अनुवाकसे जाना जाता है कि सारा संसार जलमय था, उसी जल-के एक कमलपत्रपर प्रजापतिका जन्म हुआ। उनके मनमें सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। इसी कारण जब मनुष्यके मनमें इच्छा उत्पन्न होती है, तब वह वाणीद्वारा उसे व्यक्त करता है और फिर काममें लगता है। प्रजापतिने पर्यालोचन वा तप किया और अनन्तर अपने शरीरको कंपाया। इससे उनके शरीरसे अरुण, केतव और वातरसना ये तीन ऋषि उत्पन्न हुए। उसके नख हुए वैखानस ऋषि, उसके बाल हुए वालखिल्य ऋषि और रस हुआ जल। इसी जलमें एक कूर्म वा कछुआ चल रहा था। उससे प्रजापतिने कहा कि तू मेरे मांससे बना है। उसने कहा, "नहीं, मैं यहां पहलेहीसे था।" इसलिये "पूर्वमासम" (पहलेसे ही था) शब्दसे वह पुरुष हुआ। वह "सहस्रशीर्षः सहस्राक्षः सहस्रपात्" -हजार सिरों, हजार आंखों और हजार परोंवाला पुरुष हुआ और प्रजापतिके सामने खड़ा हुआ। उसने कहा कि तू मेरे पहले से था, इसलिये तू ही पहले सृष्टि कर। इसपर उसने अपने हाथसे जल "एवाह्येव" कहकर अपने सामने फेंक दिया। इससे आदित्य और पूर्वकी दिशा उत्पन्न हुई। इसी प्रकार अरुणकेतुने दाहिनी ओर जल फेंका, तो उससे अग्नि और दक्षिण दिशा, पीछे फेंका तो वायु और पश्चिम दिशा और बायीं ओर फेंककर कहा "हीन्द्र" तो इससे इन्द्र और उत्तर दिशा, मध्यमें फेंका तो "पूषन्" और कोणोंकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार कछुआ विष्णुका अवतार हो गया। शतपथ ब्राह्मण प्र. ७ अ. ४ ब्रा. ३ कं. ५ में जो कथा है, उसमें कछुआ ही प्रजापति बन

गया था। शरीरको आसन देनेका जो विनियोग है, उसमें कहा है कि शरीरका ऋषि आत्मा है और देवता सत्यपुरुष वा परमात्मा है तथा छन्द प्रकृति है अर्थात् प्रकृति शरीरका नियन्त्रण किया करती है और उसका द्रष्टा आत्मा है, जो सत्यपुरुष या परमात्माका प्रतिनिधि है।

संकल्प।

इसके अनन्तर सन्ध्याका उद्देश्यकथन वा संकल्प है। इसमें कहा गया है कि "ॐ उत्पात्त दुरित क्षयाय ब्रह्मलोकप्राप्तिकामः प्रातः (मध्याह्न अथवा सायं) सन्ध्यामहमुपासे।" अर्थात् किये हुए पापोंके नाशके लिये मैं सन्ध्या करता हूं। कोई कोई "ब्रह्मवर्चस कामः" अर्थात् ब्रह्मतेजकी कामनासे भी सन्ध्या करते हैं; बाद गायत्रीका ध्यान और आवाहन है। जो लोग केवल संहिताओंके मन्त्रोंका उच्चारण और उनके अनुसार कृत्य करना ही उचित समझते हैं, उनके लिये गायत्रीका आवाहन और विसर्जन निष्प्रयोजनीय है। परन्तु जो ब्राह्मण ग्रन्थोंके प्रयोगोंको भी वैदिक समझते हैं, उनके लिये आवाहन और विसर्जन आवश्यक है। यहां आवाहनकी जो व्यवस्था है, वह सनातनमतानुसार है जिसमें वैदिक और पौराणिक कल्पनाओंका सम्मिश्रण है। आगे चलकर उपस्थानके समय भी आवाहनकी व्यवस्था है। उससे यह भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि दो बार आवाहन कैसा। परन्तु सूक्ष्म विचारसे जाना जायगा कि यह आवाहन यथार्थमें आवाहन नहीं है, बल्कि सन्ध्योपासनके अनुकूल वातावरण तैयार करना अथवा मनमें सन्ध्याके सुसम्पन्न होने योग्य विचारोंका उत्पन्न करना मात्र

है और वह आवाहन ही यथार्थ आवाहन है। गायत्री न स्त्री है और न पुरुष, केवल छन्द है और सूर्य्यकी शक्ति रूपसे उसका वर्णन किया गया है। यही ध्यान और आवाहन है।

ध्यान और आवाहन।

इस सन्ध्योपासन विधिमें सूर्यके स्वरूपके अनुसार गायत्रीके ध्यानकी व्यवस्था है। गायत्री, सावित्री और सरस्वती ये तीन गायत्रीके रूप माने गये हैं। गायत्री छन्द है, परन्तु इस पोथीमें उसका देवीरूपसे ध्यान बताया गया है। वह गायत्री प्रातःकालमें ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नमें रुद्रशक्ति और सायंकालमें विष्णुशक्ति मानी गयी है तथा इसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद लिये है। प्रातःकाल बाल सूर्य्य, मध्याह्नमें प्रचण्ड, और सायंकालमें वृद्ध सूर्य्य रहता है। इसी लिये प्रातःकालकी गायत्री बाला, मध्याह्नकी युवती और सायंकालकी वृद्धा कही गयी है। प्रातःकालकी गायत्री तीन अक्षर (गा य त्री) वाली बाला है। वह ब्रह्माकी शक्ति होनेसे रुद्राक्षमाला और कमण्डलु लिये है। फिर प्रातःकालका सूर्य रक्तवर्ण होता है, इसलिये गायत्री भी रक्तवर्णा और चतुर्वक्त्रा (चार मुंहवाली), हंसवाहिनो, ब्रह्माकी शक्ति है और ब्रह्माकी देवता है तथा ब्रह्मलोकनिवासिनी है। ऋग्वेद उसकी गोदमें है और वह जटामुकुटमण्डित है। ऐसी गायत्री देवीका सूर्यमण्डलसे आवाहन किया जाता है। हे वर देनेवाली देवी, तोन अक्षरवाली और ब्रह्मज्ञानको देनेवाली वेदोंकी माता, ब्रह्माकी जननी, आ। इसी रूपको नमस्कार किया जाता है।

इसी प्रकार मध्याह्नकालकी गायत्री सूर्यकी पूर्ण प्रतिभाके कारण

सावित्री, युवती और श्वेत तथा श्वेतवस्त्रा है। मध्याह्न सूर्य श्वेत होता है। रुद्रशक्ति होनेसे वह त्रिनेत्रा, त्रिशूलधारिणी, वृषभवाहिनी, जटामुकुट मण्डित, कैलासकी रहनेवाली और सूर्यमण्डलमें आनेवाली, यजुर्वेद लिये, रुद्रकी शक्ति बतानेवाली और रुद्रकी जननी है। हे छन्दोंकी माता सावित्री रुद्रकी जननी, तुझे नमस्कार है।

फिर सायंकाल सूर्य वृद्ध हो जाता है, इसलिये गायत्रीको वृद्धा कहते हैं। साथ ही वृद्धाका ज्ञान अथवा अनुभव अधिक होनेसे गायत्रीको ज्ञानरूपिणी सरस्वतीकी उपाधिसे अलंकृत किया है। सन्ध्याको अन्धेरा हो जाता है, इसलिये गायत्रीको कृष्णा अर्थात काली कहा है। विष्णुशक्ति होनेके कारण सन्ध्याकी गायत्री पीताम्बर-धारिणी और चतुर्भुजा है, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये गरुड़पर सवार है। बदर्याश्रममें रहनेवाली और सूर्यमण्डलमें आनेवाली वैष्णवी है। हे सरस्वती तू छन्दोंकी माता है और विष्णुकी जननी है। अत: तुझे मेरा नमस्कार है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद क्रमशः कर्म, उपासना और ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले माने जाते हैं। कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीन सीढ़ियां हैं और इसी लिये प्रातःकालकी गायत्री, मध्याह्नकी सावित्री और सायंकालकी सरस्वतीसे इनका सम्बन्ध लगाया गया है। गायत्रीका वास मेरुपर, सावित्रीका कैलाशपर और सरस्वतीका बदर्याश्रममें बताया गया है। सूर्यसे गायत्रीका सम्बन्ध है, इसलिये प्रातःकालके सूर्यका स्थान सुमेरु पर्वत है। सुमेरु या मेरु पृथिवीतलपर सर्वोच्च भूमि है। परन्तु मध्याह्नके समय कैलाशपर पूर्ण प्रकाश रहता है

और कैलाश पर्वत इस समय पृथिवीका सर्वोच्च भाग माना जाता है। इस लिये सावित्रीरूपिणी गायत्री कैलाशवासिनी है। वदरीनाथ वा वदर्य्याश्रम यद्यपि हमारे यहांसे वहुत ऊंचेपर है, पर कैलाशके देखते नीचेपर है, इसलिये सायंकालकी गायत्रीका वही वासस्थान माना गया है। गायत्री-के विसर्जनके समय भूमिपर मेरु नामक जो पर्वत है. उसके ऊपरी भागमें जो उत्तम शिखर है. उसमें यह गायत्री देवी रहती है ऐसा कहा है। गायत्रीका यह आवाहन विसर्जन तैत्तरीय आरण्यकसे लिया गया है। यह भी मार्केकी वात है कि वदर्य्याश्रममें सायं सन्ध्याकी सरस्वतीरूपिणी वैष्णवी गायत्रीकी मूर्त्ति स्थापित है और वह इस ध्यानके सर्वथा अनुकूल है। इससे जाना जाता है कि सरस्वतीके स्वरूपकी यह कल्पना प्राचीन है। कैलाशका कोई यात्री ही वता सकता है कि वहां सावित्रीकी कोई प्रतिमा है या नहीं।

ध्यान और आवाहन।

प्रातः सन्ध्यामें।

ॐ गायत्रीं त्र्यक्षरां वालां साक्षसूत्रकमण्डलुम्।
रक्तवस्त्रां चतुर्वक्त्रां हंसवाहनसंस्थिताम्॥
ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम्।
ऋग्वेद कृतोत्सङ्गां जटामुकुटमण्डिताम्॥
आवाहयाम्यहं देवीं गायत्रीं सूर्य्यमण्डलात्।
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि॥
गायत्रि छन्द साम्मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते।

मध्याह्न सन्ध्यामें ।

ॐ सावित्रीं युवतीं शुक्लां शुक्लवस्त्रां त्रिलोचनाम् ।
रुद्राणीं रुद्रदैवत्यां रुद्रलोकनिवासिनीम् ॥
यजुर्वेद कृतोत्सङ्गां जटामुकुटमण्डिताम् ।
कैलास विहितावासामायान्तीं सूर्य्यमण्डलात् ।
वरदां त्र्यक्षरां साक्षाद्देवीमावाहयाम्यहम् ।
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे रुद्रवादिनि ॥
सावित्रि छन्दसाम्माता रुद्रयोने नमोऽस्तुऽते ।

सायं सन्ध्यामें ।

ॐ वृद्धां सरस्वतीं कृष्णां पीतवस्त्रां चतुर्भुजाम् ।
शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुड़वाहनाम् ॥
वदर्याश्रमवासान्तामायान्तीं सूर्य्यमण्डलात् ।
सामवेद कृतोत्सङ्गां वनमालाविभूषिताम् ॥
वैष्णवीं त्र्यक्षरां साक्षाद्देवीमावाहयाम्यहम् ।
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे विष्णुवादिनि ॥
सरस्वतिच्छन्दसाम्मात र्विष्णुयोने नमोऽस्तुते ।

ध्यान और आवाहनके ये श्लोक तो स्पष्ट ही पौराणिक हैं । परन्तु इनका आधार तैत्तिरीय आरण्यक है । उसके दसवें प्रपाठकके ३६ वें अनुवाकमें जो आवाहन मन्त्र मिलता है, वह इस प्रकार है:—

"आयातु वरदा देवी अक्षरंब्रह्मसम्मितं । गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्मजुषस्व मे । ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्रीमावाहयामि ।

परन्तु इसी प्रपाठकके ३४।३५ अनुवाकोंमें इन्हीं बातोंका विस्तार इस प्रकार किया गया है :—

आयातु वरदादेवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितं । गायत्री छन्दसां मातेदं ब्रह्मजुषस्व मे । यदन्हात् कुरुते पापं तदन्हात् प्रतिमुच्यते । यद्रात्रियात् कुरुते पापं तद्रात्रियान् प्रतिमुच्यते । सर्ववर्णे महादेवि सन्ध्या विद्ये सरस्वती ॥ अनु० ३४ ॥

ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्री मावाहयामि सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि छन्दर्षीनामावाहयामि श्रियमावाहयामि गायत्रिया गायत्री छन्दो विश्वामित्र ऋषिः सविता देवताऽग्निर्मुखं ब्रह्मा शिरो विष्णुः हृदयं रुद्रः शिखा पृथिवी योनिः प्राणापानोव्यानोदान समानाः सप्राणा श्वेतवर्णा सांख्यायन सगोत्रा गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदा षट्कुक्षिः पंचशीर्षोपनयने विनियोगः ॐ भूः । ॐ भुव. । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यं । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् । ओमापोज्योति रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः सुवरोम् ॥ अनु० ३५ ॥

यह इसी रूपमें अथर्ववेदकी त्रिपान्नारायणोपनिषद्में भी मिलता है ।

प्रणवन्यास ।

पहले प्रणव न्यास है । प्रणवमें (अ, उ, म्) ये तीन अक्षर हैं । इनसे सत्व, रज और तमका भाव ग्रहण किया जाता है । इसलिये सत्वगुणकी स्थिति तो नाभिमें, रजोगुणकी हृदयमें और तमोगुणकी सिरमें है । वास्तवमें तामस भाव सिरमें और राजस भाव हृदयमें

रहता है। नाभि देश समान वायुका स्थान होनेसे उसमें सात्विक भाव रहना स्वाभाविक है।

महाव्याहृति न्यास।

अनन्तर महा व्याहृतियोंसे नाभिके ऊपरके भागोंके न्यास वा स्पर्श करनेकी विधि है। भूर्लोक तो हृदय माना गया है. भुवर्लोक शिर और स्वर्लोक शिखा है।

करन्यास।

इसके उपरान्त कर न्यास है। कहीं तो गायत्री मन्त्रसे यह कर-न्यास किया जाता है और कोई अत्रिके इस वचनसे करशोधन वा करन्यास करते हैं:—

अंगुष्ठाभ्यान्तु गोविन्द तर्ज्जन्योश्च महीधरं।
मध्यमायां हृषीकेश मनामिकायां त्रिविक्रमं॥
कनिष्ठकायां न्यसेद्विष्णुं हस्तमध्ये तु माधवं।
जनार्दनं हस्त पृष्ठे करशोधन मीरितं॥

अङ्ग न्यास।

सन्ध्या वैदिक कर्म है इसलिये वैदिक मन्त्रोंसे कृत्य करना ही समीचीन है और करन्यास इसी प्रकार करना चाहिये। इसके बाद सप्तव्याहृतियोंकी कल्पना शरीरमें की गयी है। पैरोंसे आरम्भ कर भौंहोंके बीच अथवा ब्रह्माण्डतक शरीर सातो व्याहृतियोंमें बांटा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि इस शरीरहीमें सब कुछ है और परमात्माके जिन गुणोंको ये व्याहृतियां प्रकट करती हैं, वे मनुष्यके उन उन अङ्गोंमें हैं और यदि इस दृष्टिसे मनुष्य उनका नित्य स्मरण

और चिन्तन करे, तो अपनेको उच्च बना सकता है और इस प्रकार "नर नरकी करनी करे तो नारायण हो जाय" कहावत सिद्ध कर सकता है।

इसके पश्चात् गायत्री मंत्रसे हृदय और उसके ऊपरके अङ्गोंके न्यासकी विधि है। यह कृत्य तो स्पष्ट ही वैदिक है।

प्राणायाम।

इसके आगे प्राणायाम किया जाता है। प्राणायामका अर्थ है प्राणवायुका रोकना। यह योगकी क्रिया है। परन्तु प्रत्येक मनुष्यको आयु, आरोग्य और बलकी वृद्धिके लिये प्राणायाम करना चाहिये। एक बार बायें नथुनेसे वायु ग्रहण करते समय मनमें मन्त्र जपता रहे और फिर वायुको वहीं रोककर मंत्र जपे और अन्तमें बायें नथुनेसे मंत्र जपता हुआ वायु निकाल दे। वायु भरनेके कारण पूरक, घड़ेकी तरह बन्द करके रखनेके कारण कुम्भक और बाहर निकालनेके कारण रेचक प्राणायाम कहा जाता है। इस प्रकार तीन तीन बारका अभ्यास करनेसे आयु, आरोग्य और बलकी वृद्धि होती है। प्रणवके सम्बन्धमें नाभि, हृदय और सिरमें सत्व, रज और तमकी जो कल्पना पहले की गयी थी, उसीके अनुसार पूरक प्राणायामके समय नाभिमें नील कमलके समान श्याम चतुर्भुज, विष्णुका, कुम्भकके समय हृदयमें कमलासन, रक्तवर्ण, चतुर्मुख ब्रह्माका और रेचकके समय ललाटमें शुद्धस्फटिकके समान निर्मल पापनाशक महेश्वरका ध्यान करे। ध्यानकी यह कल्पना शुद्ध पौराणिक है। परमेश्वरके तीन रूपों रक्षक, स्रष्टा और नाशककी सत्व, रज और तमके अनुसार कल्पना की गयी है।

प्राणायामके मंत्रके विनियोगोंसे स्पष्ट होता है कि वह प्रणव, व्याहृतियों, "तत्सवितुः" और "आपोज्योतिः" मंत्रोंके योगसे बना है। प्रणवके विना किसी मंत्रका प्रयोग ही नहीं होता, इस लिये चाहे वैदिक मंत्र हो या व्याहृति या कोई श्लोक अथवा पद वा वाक्य सबके पहले प्रणव लगा दिया जाता है। व्याहृतियोंका प्रयोग केवल प्राणायाम मंत्र अथवा अङ्गन्यासमें ही होता है। व्याहृतियोंसे लोकोंका निर्देश तो होता ही है, पर उनमें प्रत्येक परब्रह्मके महान् गुणोंका अर्थ देती है। प्रणवके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता परमात्मा और उसका छन्द गायत्री है। गायत्री छन्द एकाक्षर भी होता है, इस लिये ॐ गायत्री छन्द होनेमें कोई बाधा नहीं। सातो व्याहृतियोंके ऋषि तो अकेले प्रजापति ही हैं, पर उनके देवता और छन्द अलग अलग हैं। भूःका देवता अग्नि, भुवःका वायु, स्वःका सूर्य, महःका बृहस्पति, जनःका वरुण, तपःका इन्द्र और सत्यम्का विश्वेदेवा देवता तथा इनके छन्द क्रमशः गायत्री, उष्णिक अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती हैं।

"तत्सवितुः" मन्त्रके ऋषि विश्वामित्र हैं और देवता सविता तथा छन्द गायत्री है। "आपो ज्योतिः" मन्त्रके ऋषि तो प्रजापति हैं, परन्तु देवता ब्रह्म, अग्नि, वायु और सूर्य हैं और छन्द आसुरी गायत्री है। दैवी गायत्री छन्द एक अक्षरका, वैदिक वा आर्षी २४ अक्षरका और आसुरी गायत्री छन्द १५ अक्षरका होता है। इसी कारण "तत्सवितुः" वैदिक गायत्री छन्द और "आपोज्योतिः" आसुरी गायत्री छन्द है। यह वेदके अन्तिम भागसे लिये जानेके कारण "शिरः" भी कहाता है। इस प्राणायाम मंत्रमें परब्रह्म परमात्माकी स्तुति है। "तत्सवितुः" मंत्र

यजुर्वेदके ३३ रे अध्यायका ३५ वां, २२ वें का ९ वां और ३० वें का २रा मंत्र है। वह ऋग्वेदके ३ रे मण्डलके ५ वें अनुवाकके ६२ वें सूक्तका मंत्र है। प्राणायामका यह पूरा मंत्र किसी संहितामें नहीं मिल्ता। यह ज्योंका त्यों तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकके २७ वें अनुवाकके रूपमें पाया जाता है। आर्य समाजी सन्ध्यामें सातो व्याहृतियोंके पहले ओंकार लगाकर ही प्राणायाम किया जाता है। इन व्याहृतियोंसे यों तो भू आदि सातो लोकोंका बोध होता ही है, परन्तु इनके और भी अर्थ हैं। "भूः"=सत्। यह उसी भू धातुसे सम्बन्ध रखता है, जिसका अर्थ होना बताया जाता है अर्थात् है। "भुवः"=चित्। इसका अर्थ प्रकाश करनेवाला भी है। स्वः=सुखस्वरूप वा आनन्द। महः=बड़ा वा सर्वपूज्य वा सर्वशक्तिमान्। जनः=सबका कारण वा जनक अथवा उत्पादक। तपः=तेज अथवा सर्वप्रकाश। सत्यम्=सर्वबाध रहित। इस प्रकार सातो व्याहृतियोंमें परमात्माके सात गुणोंका वर्णन है अर्थात् परमेश्वर सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमान् सबका उत्पादक, सबका प्रकाशक और सर्व सत्य है। इसके बाद तत्सवितुः मंत्रका अर्थ है, "हम सविता देवताके उस आनन्दमय तेजका ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियोंको सन्मार्गमें लगावे।" "आपोज्योतिः" का अर्थ है कि "वह जलकी भांति सर्वव्यापक है, ज्योति है, रस है और अमृत है और सच्चिदानन्द ब्रह्म है।"

सायणाचार्यने इस प्राणायाम मन्त्रकी व्याख्या इस प्रकार की है :—"भूसे लेकर सत्यपर्यन्त सात लोकोंकी प्रतिपादिका सात व्याहृतियां हैं। उन लोकोंका प्रणव प्रतिपाद्य ब्रह्म स्वरूपत्व प्रत्येकके

साथ प्रणव-उच्चारण करनेके कारण है। तत्सवितुः गायत्री मन्त्र है और इसका अभिप्राय यह है कि प्रेरक अन्तर्यामी देवताका जो श्रेष्ठ तेज है, उसका हम ध्यान करते हैं, जो सविता अर्थात् परमेश्वर हमारी बुद्धियोंको तत्त्वबोधके लिये प्रेरित करे। जो जल नदी समुद्र आदिमें है और जो ज्योति अर्थात् सूर्य आदि हैं, जो मीठा, कड़वा आदि छः प्रकारके रस हैं और जो अमृत है अर्थात् जिसकी रक्षा देवताओंको करनी चाहिये, वह सब "ॐ" प्रणवप्रतिपादित ब्रह्म ही है और तो क्या भूर्भुवः स्वः जो ये तीन लोक हैं, उनका भी प्रतिपाद्य प्रणव वा ब्रह्म ही है।"

सविताका साधारण अर्थ सूर्य समझा जाता है, परन्तु यहां सूर्य नहीं, बल्कि "देवानां प्रसविता" देवताओं और सूर्यादिको उत्पन्न करनेवाला है। इन मन्त्रोंमें सूर्योपासना नहीं है, ब्रह्मोपासना है। इसलिये प्राणायाम मन्त्रका यह अर्थ हुआ कि परमेश्वर सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान, सर्वस्रष्टा, सर्वतेज और सर्वसत्य है। उसी प्रेरक अन्तर्यामी सविता देवताके उस श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको तत्त्वबोधके लिये प्रेरित करे। वह जल अथवा सर्वव्यापक है, ज्योति है, रस है और अमृत है तथा सच्चिदानन्द ब्रह्म है।

नाकसे जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसका नाम प्राणवायु है। प्राण ही प्रधान शक्ति और वे ही संसारके रक्षक हैं। इस लिये प्राणको वशमें करनेसे ही सब कुछ वशमें किया जा सकता है। सूक्ष्म और स्थूल भेदसे प्राण दो प्रकारके हैं। प्राणको वशमें करनेवाली क्रिया ही प्राणायाम है। पहले दहिना नथुना या

इडा अंगूठेसे बन्द कर पिङ्गला या बायें नथुनेसे वायु भीतर खींच ली जाती है। इसका नाम पूरक है। बाद दहिना नथुना अंगूठेसे बन्द करके वायुको भीतर रोके रहते हैं। इसे सुषुम्नामें रखना या कुम्भक कहते हैं और फिर बायें नथुनेसे भरी हुई वायुको दहिने नथुने या इडासे निकाल देते हैं। यह रेचक कहाता है। इस समय दहिना नथुना बन्द रहता है और बायां खोल दिया जाता है। प्राणायामके समय मुंह बन्द रहता है यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्राणायामके दो अभिप्राय हैं। एक तो यह शरीर शुद्ध करता है और दूसरे मनको शान्त कर मनुष्यको ध्यान करने योग्य बनाता है। शरीर शुद्ध इस प्रकार होता है कि प्राणायामसे रक्त शुद्ध होता है और फेफड़े और छाती बढ़ती है। जब शरीर शुद्ध हो जाता है, तब मन शान्त होता और परमात्माके गुणोंका इस ढङ्गसे स्मरण करना सहज हो जाता है। फिर शरीर परमेश्वरके वास योग्य बन जाता है और जीवात्मा परमात्माका अन्तर धीरे धीरे नष्ट हो जाता है। इस प्राणायामके समय ही साधकको मालूम होने लगता है कि विष्णु स्वरूप अर्थात् परमात्माके सतोगुणका वास मेरे नाभि देशमें है। नाभि देशमें अन्नादि आहारके पचानेके लिये यन्त्र हैं, इसलिये शरीर रक्षाके साधन यहीं हैं और विष्णुका कार्य रक्षा करना है, इसलिये यहीं रक्षिणी शक्ति रहती है। ब्रह्मस्वरूप अर्थात् रजोगुणका वास हृदयमें है। यह देश रक्तसंचारका केन्द्र है और रुद्र स्वरूप अर्थात् तमोगुणका वास सिर वा मस्तिष्कमें है। रक्षिणी शक्ति नाभिमें, उत्पादिका हृदयमें और नाशनी मस्तिष्कमें है। इस प्राणायामसे शरीरमें विद्युत्-संचार होता है।

पूरक, कुम्भक और रेचकका तीन तीन बार अभ्यास करनेको कहा गया है। परन्तु प्रारम्भमें यह एक बार भी असम्भव हो जाता है। इस लिये बिना मंत्रके ही पहले प्राणवायुको रोकनेका अभ्यास करना चाहिये। पूरकमें जितना समय लगाया जाय, उससे दूना रेचकमें और रेचकसे दूना कुम्भकमें लगाना चाहिये। एकसे १६ तक गिननेमें जितना समय लगे, उतना पूरकमें लगाया जाय तो ६४ तकका समय कुम्भकमें और ३२ तकका रेचकमें लगाना चाहिये। यह प्राणायाम योगकी ही सीढ़ी है। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यह पातञ्जल योगकी व्याख्या है। चित्तकी वृत्ति रोकनेका नाम योग है। प्राणवायुके निरोधका अभ्यास करते रहनेसे चित्तवृत्तिका निरोध सहज ही होने लगता है। जब इतना अभ्यास हो जाय, तब मंत्र जपते और उल्लिखित प्रकारसे ध्यान करते हुए प्राणायाम करे। इस प्रकार अभ्यास बढ़ावे। कमसे कम तीन तीन बार तो अवश्य करे। अधिक करनेमें हानि नहीं, लाभ ही है। सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली ये आठ विधियां प्राणायामकी हैं।

आचमन।

आचमनका अभिप्राय पहले बता आये हैं। प्राणायामसे शरीरमें जो गर्मी वा बिजली उत्पन्न होती है, वह प्रकृतिके लिये लाभदायक हो, हानिकर न हो, इसलिये दो आचमन करने अर्थात् ६ बार थोड़ा थोड़ा जल पीनेकी विधि है। साधारण अवस्थामें एक ही आचमन किया जाता है अर्थात् तीन बार थोड़ा थोड़ा जल पिया जाता है। परन्तु प्राणवायुके निरोधके समय दो ही आचमन किये जाते हैं। इस आच-

मनका जो मंत्र है, वह भी बड़े विचारसे रखा गया है। वह किसी संहिताका मंत्र नहीं है, बल्कि तैत्तिरीय आरण्यकका है। तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकके २३, २४ और २५ अनुवाक मध्याह्न, सायं और प्रातः सन्ध्याके प्राणायामोत्तर आचमनके मंत्र बना लिये गये हैं। प्रातःसन्ध्याका मंत्र अर्थात् २५वां अनुवाक इस प्रकार है :—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां। यद्रात्रिया पापमकार्षं। मनसा वाचा हस्ताभ्यां। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि। इदमहममृत-योनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

इस मंत्रके ऋषि, नारायण, देवता लिंगोक्त देवता और छन्द त्रिष्टुप् है और आचमनके लिये इसका प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है कि सूर्य, मन्यु, मन्युपति, मन्यु वा क्रोधमें किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें। मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और गुह्येन्द्रियसे मैंने रातको जो पाप किये हों, उन्हें रात्रिका अभिमानी देवता नाश करे और भी जो कुछ पाप मुझमें हो, उसे और अपनेको सूर्यकी ज्योति अमृतकी योनिमें मैं हवन करता हूं। स्वाहा।

मनुष्य शरीर पांच कोशोंका होता है (१) अन्नमय कोश, (२) प्राणमय कोश, (३) मनोमय कोश, (४) विज्ञानमय कोश और (५) आनन्दमय कोश। इन पांचोंमें अच्छा बुरा कुछ करनेका विचार इसी मनोमय कोशमें ही उत्पन्न होता है। मनोमय कोश ही किसीको कुछ देता और किसीका कुछ छीनता है। इसमें सदसद

मनका जो मंत्र है, वह भी बड़े विचारसे रखा गया है। वह किसी संहिताका मंत्र नहीं है, बल्कि तैत्तिरीय आरण्यकका है। तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकके २३, २४ और २५ अनुवाक मध्याह्न, सायं और प्रातः सन्ध्याके प्राणायामोत्तर आचमनके मंत्र बना लिये गये हैं। प्रातःसन्ध्याका मंत्र अर्थात् २५वां अनुवाक इस प्रकार हैं :—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां। यद्रात्रिया पापमकार्षं। मनसा वाचा हस्ताभ्यां। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि। इदमहममृत-योनौ सूर्यो ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

इस मंत्रके ऋषि, नारायण, देवता लिंगोक्त देवता और छन्द त्रिष्टुप् है और आचमनके लिये इसका प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है कि सूर्य, मन्यु, मन्युपति, मन्यु वा क्रोधमें किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें। मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और गुह्येन्द्रियसे मैंने रातको जो पाप किये हों, उन्हें रात्रिका अभिमानी देवता नाश करे और भी जो कुछ पाप मुझमें हो, उसे और अपनेको सूर्यकी ज्योति अमृतकी योनिमें मैं हवन करता हूं। स्वाहा।

मनुष्य शरीर पांच कोशोंका होता है (१) अन्नमय कोश, (२) प्राणमय कोश, (३) मनोमय कोश, (४) विज्ञानमय कोश और (५) आनन्दमय कोश। इन पांचोमें अच्छा बुरा कुछ करनेका विचार इसी मनोमय कोशमें ही उत्पन्न होता है। मनोमय कोश ही किसीको कुछ देता और किसीका कुछ छीनता है। इसमें सदसद्

आ जाता है और जब वह मनी मन लज्जित होता है, तब वह पवित्र हो जाता है।

"सूर्यश्च मा" मन्त्रकी तरह ही "अग्निश्च मा" मन्त्र भी है। दानोंमें अन्तर इतना ही है कि वह प्रातः सन्ध्याका आचमन मन्त्र है और यह सायं सन्ध्याका है। पहले मन्त्रमें जहां सूर्य या रात्रिका उल्लेख है, वहीं दूसरे मन्त्रमें "अग्नि" या दिन कर देनेसे सायं सन्ध्याका आचमन मन्त्र बन जाता है। इसके भी ऋषि नारायण, देवता लिङ्गोक्ता देवता और छन्द त्रिष्टुप् है। यह उक्त १० वें प्रपाठकका २४वां अनुवाक है। २३ वां अनुवाक मध्याह्न सन्ध्याका आचमन मन्त्र है। इसके ऋषि मारीच काश्यप, देवता आप और छन्द अनुष्टुप् है और यह इस प्रकार है :—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु मां। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति-र्ब्रह्मपूता पुनातु मां। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसताञ्च प्रतिग्रहँ स्वाहा ॥

इस मन्त्रका अर्थ है "जल वा आप पृथिवीको पवित्र करे और पवित्र हुई पृथिवी मुझे पवित्र करे। जल ही ब्रह्मणस्पतिको अर्थात् वेदके प्रति-पालक आचार्यको पवित्र करे और उस आचार्यका उपदेश किया वेद पवित्र होकर मुझे पवित्र करे। मैंने अभोज्य अर्थात् न खाने योग्य वा जूठा यदि कुछ खाया हो, मेरा जो कुछ दुश्चरित्र वा पाप हो और असत् मनुष्यों वा दुष्टोंसे मैंने जो दान लिया हो, उस सबको आप पवित्र करें स्वाहा। यह अर्थ सायणाचार्य कृत ही है। केवल इसमें इतना ही अन्तर है कि "असतां" का अर्थ उन्होंने "शूद्रादीनां" किया है अर्थात्

जिसका अर्थ हम करते हैं "दुष्टोंका, बदमाशों वा पाप कर्मसे धनोपार्जन करनेवालोंका" उसका अर्थ सायणाचार्य कहते हैं "शूद्र आदिका"। उस समय असत् पुरुष शूद्रोंको ही कहते थे। जान पड़ता है कि इसी कल्पनाके कारण शूद्रोंसे दानादि लेने और उनकी पुरोहिताई करनेवाले ब्राह्मण निन्दित ठहराये गये। जो हो, यहां जलकी महत्ता-का वर्णन किया गया है और इससे जान पड़ता है कि उसमें पवित्र करनेकी शक्ति कितनी है।

मार्जन।

यहांसे कई मन्त्रोंमें आप वा जलस्वरूप परमात्माकी प्रार्थना है। पहले मार्ज्जन किया जाता है। मार्ज्जनके तीन मन्त्र ऋग्वेदके १० वें मण्डलके प्रथम अनुवाकके ९, वें सूक्तसे लिये गये हैं। यजुर्वेदमें ये तीन मन्त्र एक बार तो ११ वें अध्यायमें ५० वें, ५१ वें और ५२ वें मन्त्रके रूपोंमें और दूसरी बार ३६ वें अध्यायमें १४ वें, १५ वें और १६ वें मन्त्रके रूपोंमें मिलते हैं। इस मार्ज्जन मन्त्रका ऋषि सिन्धुद्वीप देवता आप स्वरूप परमात्मा और छन्द गायत्री है। गायत्री छन्द २४ अक्षरोंका होता है और इस मार्ज्जन मन्त्रमें तीन ऋचाएं होती हैं। प्रत्येक ऋचा आठ आठ अक्षरोंके एक एक पादमें बांट दी गयी है और इस प्रकार मार्ज्जनके ९, मन्त्र बन गये हैं। हमने उन्हें इस रूपमें रखा है, जिसमें तीनो ऋचाएं अलग अलग मालूम हो जांय।

ॐ आपो हिष्ठामयो भुवः। ॐ तान ऊर्जे दधातन। ॐ महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयते ह नः।

ॐ उशती रिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा चनः।

इस मार्जन मन्त्रमें आपस्वरूप परमात्मासे प्रार्थना की गयी है कि हे आप जिस हेतु तुम सुखके कारण हो, इसलिये हम (सुख चाहनेवाले) लोगोंको पौष्टिक पदार्थों द्वारा ऐसा बना दो कि हम बड़ा रमणीय दृश्य देखें अर्थात् तुम्हारा साक्षात्कार करें। जो तुम्हारा सुखतम रस है, उसका हमें भागी बनाओ, जैसे अपने बच्चोंका हित चाहने वाली माताएं अपना दूध पिलाती हैं। इसके लिये जहां तुम हमें भेजो, वहां हम जानेको तैयार हैं। हे आप तुम हमें प्रजनन शक्ति दो।

इस मन्त्रका अभिप्राय जलस्वरूप परमात्माका गुणानुवाद करना तो है ही, परन्तु जलके गुणोंका भी वर्णन किया गया है। जल प्राणियों अथवा मनुष्योंके लिये सुखका मूल है, क्योंकि खाद्य पदार्थ उत्पन्न करता है और उससे पुष्ट होकर हमारी दिव्य दृष्टि होती है।

सात मन्त्र पढ़ते हुए सिर पर मार्जन किया जाता है। आठवां पढ़कर पृथिवीपर जल छिड़का जाता है। अन्तमें नवां मन्त्र पढ़कर फिर सिरपर मार्जन किया जाता है। पिछली ऋचाके तीन टुकड़ोंका यह भी अर्थ किया जाता है कि "हे आप, पापके नाशके लिये तुम हमारी सहायता करनेको तैयार हो, उसके लिये हम तुरत तुम्हें ले जाते हैं। हे आप तुम हमें पुत्र पौत्रादि उत्पन्न करनेमें लगाओ।" मन्त्रके "यस्यक्षयाय जिन्वथ" पादका अर्थ "पापके नाशके लिये तुम हमारी सहायता करनेको तैयार हो" किये जानेके कारण ही उसे पढ़कर जल पृथिवीपर छोड़ दिया जाता है। अभिप्राय यह

है कि जल हमारे पापके नाशमें सहायता देता है, इसलिये पृथिवीपर जल छिड़क देनेसे हमारा पाप नष्ट हो गया। पर यदि उसका हमारा दिया हुआ अर्थ किया जाय, तो पृथिवीपर जल छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है और जो वह अर्थ मानते हैं, वे छोड़ते भी नहीं हैं। सिरपर मार्जन ही करते हैं।

अवभृथ।

अवभृथ स्नान अश्वमेधके उपरान्त होता है। इस यागमें "मधु" पान किया जाता है। "मधु" सोम आदि लताओंके योगसे बना हुआ नशीला पदार्थ होता था। इसमें कुछ पापकी कल्पना करके अवभृथ स्नान द्वारा उसकी निष्कृति की जाती थी। इस द्रुपदादिव मंत्रकी दो विधियां हैं एक कोकिली, जिसके ऋषि "कोकिलो राजपुत्र" कहाते हैं और दूसरीके सौत्रामणिके अन्तर्भावके कारण "प्राजापत्यश्वि सरस्वतीन्द्रा ऋषयः" हैं। "देवायज्ञ मतन्वत भेषजम्भिषजाश्विना। वाचासरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः॥" १९।१२ यजुर्वेदके इस मंत्रके अनुसार जब देवताओंने भेषजों वा ओषधियोंका यज्ञ किया, तब इसमें अश्विनी कुमार, सरस्वती और इन्द्र सभी थे। सरस्वतीने वाचा द्वारा इन्द्रको शक्ति दी थी। अश्विनी कुमारने इन्द्रको सहायता दी थी। जलमें क्या गुण हैं यह अश्विनी, सरस्वती और इन्द्रसे बढ़कर कोई नहीं जानता। इस लिये इस मंत्रके ऋषि प्राजापत्यश्वि, सरस्वती और इन्द्र हैं। चन्द्रोदयाह्निकमें लिखा है "सर्वशाखा साधारण्येपि ऋष्यादि स्मरणार्थं तेन कोकिलो राजपुत्र ऋषिरन्यत्र माध्यन्दिन शाखायामेतस्य सौत्रामण्यान्तर्भावात् प्राजापत्याश्वि सरस्वतीन्द्राणामार्षं।" सर्वानुक्रम

सूत्रम्में भी लिखा है "अथ सौत्रामणी प्रजापतेरार्षम् अश्विनोः सरस्वत्याश्च।" यह सन्ध्या विधि माध्यन्दिन शाखाके अनुसार है, इस लिये इसमें इस द्रुपदादिव मंत्रके ऋषि प्राजापत्यश्वि, सरस्वती और इन्द्र बताये गये हैं। इसका देवता आप है और छन्द अनुष्टुप् और इसका प्रयोग अवभृथके लिये किया गया है। उक्त द्रुपदादिव यजुर्वेदके २० वें अध्यायका २० वां मंत्र है। यह मंत्र इस प्रकार है :—

ओं द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूतं पवित्रेण वाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥

अर्थ—हे आप! जिस प्रकार खड़ाऊं उतार देनेसे उसमें लगे हुए कीचड़ आदिसे मनुष्य शुद्ध वा पृथक् हो जाता है, परिश्रमके कारण पसीना आनेपर स्नान करनेसे मैलसे शुद्ध हो जाता है और घीमें पड़े हुए कीड़ेको पवित्र वा कुशसे निकाल देनेपर वह पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार तुम मुझे पापसे शुद्ध करो।

द्रुपदादिव मंत्रका जप किया जाता है। जप और पाठमें अन्तर है। जो मंत्र मुखसे उच्चारण किया जाता है, वह पाठ करना वा पढ़ना कहाता है। परन्तु जपमें मनी मन मंत्र पढ़ा जाता है अर्थात् उसका ध्यान करना जप कहाता है। द्रुपदादिव मंत्रके जपके समय चुल्लूमें जल लेकर नाकमें लगाया जाता है और इस बीचमें प्राण वायु रोके रखना पड़ता है। बाद जल सिर पर डाल लिया जाता है।

अघमर्षण।

अघमर्षण भी आपकी सहायतासे पाप प्रक्षालन वा निरसनका प्रयत्न है। अघमर्षणका अर्थ है पापका त्याग करना। अघमर्षण

नामके एक ऋषि हो गये हैं और वे इस अघमर्षण सूक्तके द्रष्टा हैं; इसलिये उन्हीके नामपर इसका भी नाम अघमर्षण सूक्त पड़ गया है। यह ऋग्वेदके १० वें मण्डलके १२ वें अनुवाकका १९० वां सूक्त है। इसके देवता भाववृत्त (ब्रह्माका ही दूसरा नाम भाववृत्त है) और इसका छन्द अनुष्टुप् है तथा अघमर्षणके लिये इसका विनियोग किया जाता है। अंजलिमें जल भर प्राणवायुको रोक नाकमें अंजलि लगाते हुए अघमर्षण सूक्त जपते हैं। जप कर अपनी बायीं ओर जल पृथिवीपर यह समझकर फेंक दिया जाता है कि हमारा पाप इस जलमें चला गया है।

उक्त अघमर्षण सूक्त इस भांति है :—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसो ऽध्यजायत।
ततो रात्रिरजायत ततः समुद्रोऽर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवी ञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः॥

अर्थ :—ऋत अर्थात् यथार्थ संकल्प और सत्य अर्थात् यथार्थ भाषण ये सब तपके बाद परमेश्वरसे उत्पन्न हुए। अनन्तर रात्रि उत्पन्न हुई। फिर समुद्र उत्पन्न हुआ। अनन्तर अर्णव वा अशान्ति उत्पन्न हुई और अशान्त समुद्रसे संवत्सर वा काल उत्पन्न हुआ। तदुपरान्त परमेश्वर दिन रातके कालकी सृष्टि करता हुआ प्राणियों-का स्वामी होकर रहता है। उस परमेश्वरने सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी

और अन्तरिक्ष जैसे पहले बनाये थे, वैसे ही संकल्प कर बनाये। किसी किसीके मतसे बायें नथुने अथवा पिङ्गलासे वायु खींच कर इडासे निकाल कर यह जल ऐसे फेंक देना चाहिये, मानो यह पाप ही हो। इस सूक्तका जप तीन बार किया जा सकता है, पर जल लेने और प्राणवायुको रोकनेकी क्रिया एक ही बार होगी। इसलिये तीनो बारका जप एक ही साथ होगा। पापको दहिने नथुनेसे निकाल कर उसकी ओर बिना देखे अपने बांये जल फेंक देना चाहिये। इस पापका स्वरूप ऐसा बताया गया है कि सिर तो इसका ब्रह्महत्यारेका है, बांहें सोना चुरानेवाले पापीकी हैं, हृदय मदिरा पीनेवाले पापीका है, कन्धे गुरुपत्नीगामीके पाप हैं, अन्य अवयव पाप हैं और रोम छोटे पाप हैं। आखें और दाढ़ी रक्तवर्ण है। उसके हाथमें ढाल तलवार है। वह काले वर्णका है और मनुष्यके हृदयमें रहता है।

आचमन।

पहले हम कह आये हैं कि प्राणवायुके रोकनेसे शरीर और मस्तिष्कमें गर्मी चढ़ती है, उसके विकारको रोकनेके लिये आचमनकी व्यवस्था है। प्राणायामके बाद आचमनकी तरह द्रुपदादिव और अघमर्षण सूक्तके जपके बाद भी आचमनका नियम इसी कारण बनाया गया। मार्केकी बात यह है कि जैसे उस आचमनके लिये संहिताका मन्त्र नहीं हैं, वैसे ही इसके लिये भी नहीं है। यह आचमन इस प्रकार है :—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम् ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥

अर्थ—हे सर्वव्यापक आप ! तू सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें घूमता है। तेरा मुंह सब ओर है। तू यज्ञ है। तू वषट्कार या यज्ञाहुति है। तू ज्योति है, रस है और अमृत और सच्चिदानन्द ब्रह्म है।

इस मन्त्रके ऋषि तिरश्चीन, देवता आप तथा छन्द अनुष्टुप् है और इसका प्रयोग आचमनके लिये किया गया है। यह मन्त्र महानारायणोपनिषत् १५।६ और प्राणाग्निहोत्रोपनिषत्के मन्त्रसे तथा तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकके ३१ वें अनुवाकसे मिलता जुलता है। आरण्यकका मन्त्र यह है :—

ॐ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु ।
त्वं यज्ञस्त्वं विष्णुस्त्वं वषट्कारस्त्वं रुद्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं प्रजापतिः ॥

महानारायणोपनिषत् और इसमें इतना ही अन्तर है कि "अन्तश्चरति" के बदले "अन्तश्चरसि" किया गया है। प्राणाग्निहोत्रोपनिषत्में सन्ध्याके उक्त मन्त्रसे "त्वं ब्रह्मा, त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुः" अधिक है।

सूर्याञ्जलिदान ।

इस आचमनके बाद सूर्याञ्जलि दी जाती है। प्रातः और सायं सन्ध्याके समय तीन अंजलियां और मध्याह्न सन्ध्याके समय एक ही अंजली देनेकी विधि है। सूर्याञ्जलि गायत्री मन्त्रसे ही दी जाती है। यह मन्त्र इस प्रकार है :—

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

इस मन्त्रके तीन भाग हैं एक ओं, दूसरा भूर्भुवः स्वः और तीसरा तत्सवितुः मन्त्र। इसलिये इसके तीन विनियोग भी हैं। पहला विनियोग प्रणव वा ओंकारका है। इसके ऋषि ब्रह्मा, देवता परमात्मा और छन्द गायत्री है, और इसका प्रयोग सूर्याञ्जलिदानमें किया जाता है। दूसरा महाव्याहृतियोंका है। इनके ऋषि प्रजापति, देवता अग्नि, वायु और सूर्य्य तथा छन्द गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् हैं तथा इनका विनियोग सूर्यको अञ्जलि देनेमें किया जाता है। तीसरा भाग तत्सवितुः या गायत्री मन्त्र है, जिसके ऋषि विश्वामित्र, देवता सविता और छन्द गायत्री है तथा इसका विनियोग सूर्याञ्जलिदानके लिये किया जाता है। तत्सवितुः मन्त्र ऋग्वेदके ३ रे मण्डलके ५ वें अनुवाकके ६२ वें सूक्तमें है। इसी रूपमें यह यजुर्वेदके ३ रे अध्यायका ३५ वां, २२ वेंका ९ वां और ३० वें का दूसरा मंत्र है। परन्तु प्रणव और महाव्याहृतियों समेत भी यह मन्त्र यजुर्वेदके ३६ वें अध्यायके ३ रे मन्त्रके रूपमें पाया जाता है।

सूर्याञ्जलिदान केवल मन्त्र माननेवाले वैदिकोंको इष्ट नहीं है, तथापि मन्त्र-ब्राह्मणको वेद माननेवाले वैदिक तो उसे भी वैदिक ही कहते हैं, क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यकके २ रे प्रपाठकके २ रे अनुवाकमें बताया गया है कि मंदेह नाम राक्षस सूर्यको खा जाना चाहते थे, इसलिये ब्रह्मवादी सूर्याभिमुख होकर सन्ध्यामें गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल फेंकते हैं और यह वज्र बनकर उन राक्षसोंके लगता है।

कश्यपके मतसे ये त्रिंशत कोटि महावीर्य काले घोर और अति दारुण राक्षस सूर्यको खा जाना चाहते हैं, इस लिये सब देवता और तपोधन ऋषि सन्ध्योपासनामें जलांजलि फेंकते हैं। इस वज्र बने हुए जलसे वे राक्षस जल जाते हैं। यह कथा पौराणिकसी जान पड़ती है, पर इसमें छिपा वैदिक तत्त्व भी है। वृत्त और इन्द्रका युद्ध प्रसिद्ध है। वृत्तको नैरुक्त मेघ कहते हैं और इन्द्रको सूर्य। यही नहीं, ऋग्वेद ३ म० ४४ सू० में कहा है कि जन्मते ही इन्द्र आकाशको प्रकाशित करता है और १ मं० १३० सू० में कहा है कि जन्मते ही वह सूर्यके पहियोंको गति देता है। पहले अंशका अर्थ विद्युत कर लेने पर भी दूसरेसे स्पष्ट है कि सूर्यके घूमनेसे इन्द्रका सम्बन्ध है। ४ मं० २६ सू० में तो इन्द्रने अपनेको सूर्य कहा भी है और १० मं० ८९ सू० में तो वह स्पष्ट ही सूर्य कहा गया है। ८ मं० ८२ सू० में सूर्य और इन्द्रका आवाहन इस ढंगसे किया गया है मानो दोनो एक ही हों। २ मं० ३० सू० में इन्द्र सविता बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण १।६।४ में भी इन्द्र सूर्य कहा गया है। इस लिये वृत्र और इन्द्रका युद्ध वर्णन सूर्योदयका ही किसी समयका वर्णन है और सूर्याञ्जलि दानकी यह विधि उसका स्मारक है। मेघ काला होता है और वृत्तको पौराणिक लोग असुर भी कहते हैं। वृत्त और इन्द्रका युद्ध यही है कि सूर्य बादल फाड़कर निकलते हैं। परन्तु घोर मेघ होनेसे वह फिर सूर्यको ग्रास वा आच्छादित करना चाहता है। इसलिये मंदेह राक्षसोंके सूर्यको खानेकी बात कही गयी है। वृत्त और इन्द्रके युद्धमें पहले वृत्त अथवा मेघ वा अन्धकार विजयी हुआ है। बाद इन्द्रने वृत्तका वध किया है। इन्द्रका अस्त्र

लिये देवताओं और ऋषियोंकी अंजलियोंके
ो जला देनेकी बात कही गयी है। इन्द्रको
हा है। इसका कारण यह है कि वृत्रने वरुण
ा था और उसीके साथ इन्द्र भी था। इधर
सूर्यको मिला, उससे वह मेघको पिघलानेमें
का संयोग होनेसे वह पानी हो जाती है
और ऋषियोंकी अञ्जलियोंने भापको अर्थात्
ो छुड़ानेमें वज्रका काम किया है। इन
सूर्याञ्जलिकी कल्पनाके अन्तर्गत वैदिक सिद्धान्त
है। पर इस समय यह सूर्यको नहीं, प्रत्युत सूर्यके द्वारा परमात्माको
के श्रद्धाकी अंजलिका दान मात्र है। यह मन्त्र सविताके ध्यान
र प्रार्थनाका है। सविताका अर्थ सूर्य तो है ही, पर शतपथ
णमें इसे "देवानां प्रसविता" कहा है अर्थात् यह देवोंको उत्पन्न
करनेवाला है और जो देवोंको उत्पन्न करता है, वही सृष्टि रचता है।
यजुर्वेदके ११ वें अध्यायके ३ रे मन्त्रमें इस अर्थमें ही सविताका प्रयोग
हुआ है। इस मन्त्रमें सच्चिदानन्द सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके तेजका ध्यान है और
उससे प्रार्थना है कि अपने उपासकोंकी बुद्धियोंको सत्कार्यके लिये
प्रेरित करे। अनन्तर "देव एकः" कहकर प्रदक्षिणा की जाती है
जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूर्याञ्जलिदान सूर्यके लिये नहीं,
परमात्माके लिये है। लक्ष्य परब्रह्म है और उपलक्ष्य सूर्य है।

इसके बाद आचमन या जलस्पर्श किया जाता है। आचमनका
कोई उद्देश्य नहीं है, इसलिये जलस्पर्शसे ही काम चल जाता है।

उपस्थान ।

अनन्तर उपस्थान है । यह सूर्यका उपस्थान नहीं, परन्तु परमात्माका उपस्थान अर्थात् उसके निकट पहुंचनेका प्रयत्न है। प्रातःकाल अंजलि बांधकर उपस्थान मन्त्र पढ़ना चाहिये, मध्याह्न सन्ध्यामें ऊर्ध्व बाहु होकर तथा सायंकालके समय अंजलिका मुंह बन्द करके । इसका भी सूर्यकी अवस्थामें सम्बन्ध है। पहले वह कमलकी तरह प्रस्फुटित होता है, फिर पूर्ण प्रकाश करता है और फिर सन्ध्याको बन्द हो जाता है ।

सूर्यका अर्थ सूर्यरूपी वही सविता ईश्वर है। उपस्थानका अर्थ स्थानके समीप है। अगले मन्त्रोंमें सूर्यके समीप पहुंच. प्रयत्न अथवा नमस्कार है। सन्ध्याके सम्बन्धमें यह बात ध्य रखने योग्य है कि विनियोग और मन्त्रोंसे ऐसा मालूम होनेपर भी । कई मन्त्र देवता विशेषकी उपासनाके हैं, सभी मन्त्र एक अद्वितीय परब्रह्मकी प्रार्थना करते हैं, चाहे वह प्रार्थना सूर्यको लक्ष्य करके की जाय या अग्निको अथवा आपको। सबका उद्देश्य परब्रह्मकी उपासना है, किसी देवता विशेषकी नहीं।

उपस्थानके चार मुख्य मन्त्र हैं। चारो मन्त्रोंके देवता तो सूर्य हैं, परन्तु प्रथम दोके ऋषि प्रस्कण्व, तीसरेके कुत्साङ्गिरस और चौथेके दध्यङ्ङाथर्वण हैं। पहला अनुष्टुप, दूसरा गायत्री, तीसरा त्रिष्टुप् और चौथा पुर उष्णिक छन्दमें हैं। ये चारो यजुर्वेदके मन्त्र हैं। पहला "उद्वयम्" मंत्र यजुर्वेदके तीन अध्यायोंमें मिलता है। वह २० ६

अध्यायका २१ वां, २७ वें का १० वां और ३५ वेंका १४ वां मंत्र है। वही कुछ हेर फेरसे अर्थात् "उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्तऽउत्तर" इत्यादि रूपसे ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १० वें अनुवाकके ८ वें सूक्तमें आया है। दूसरा मन्त्र इसी मण्डलके इसी अनुवाकके इसी सूक्तमें ज्योंका त्यों मिलनेके सिवा अथर्ववेदके १३ वें कांडमें भी पाया जाता है। यह यजुर्वेदके ७ वें अध्यायके ४१ वें, ८ वेंके ४१ वें और ३३ वें के ३१ वें मन्त्रके रूपमें देखा जाता है। तीसरा मन्त्र यजुर्वेदके ७ वें अध्यायका ४२ वां और १३ वेंका ४६ वां है। वह ऋग्वेदके उसी मण्डलके ११६ वें अनुवाकके ७ वें सूक्तका मन्त्र है। चौथा यजुर्वेदके ३६ वें अध्यायका २४ वां मंत्र है। यह मंत्र ऋग्वेदके ७ वें मण्डलके ४ थे अनुवाकके ११ वें सूक्तमें इस परिवर्त्तित रूपमें दिखाई देता है, "तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।" इत्यादि।

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यं मगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम्॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ॥
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत
मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

अर्थ—हम लोग अन्धकारके घेरेसे बाहर निकले और उससे अच्छे आकाश तथा आकाशमें सूर्यकी उत्तम ज्योतिको देखा ।

उस सर्वज्ञकी किरणें उसे ऊपर उठाये जा रही हैं, जिसमें यह सूर्य सब संसारको दिखे ।

देवताओंकी विचित्र सेना निकली है, वह मित्र, वरुण और अग्निकी आंख है, वह (विश्वकी) आंख, देवताओंका प्यारा, तेजस्वी सूर्य पूर्वमें उदय हुआ है । हम सौ शरद्‌ऋतु देखें, सौ शरद्‌ऋतु जियें, सौ शरद्‌ऋतु सुनें, सौ शरद्‌ऋतु बोलें, सौ शरद्‌ऋतु दीन न हों और इससे अधिक समयतक देखें, सुनें, बोलें, जियें और अदीन रहें ।

सूर्यका यह उपस्थान सूर्यकी ओर मुंह करके किया जाता है । इस लिये सूर्यकी किरणें शरीरके अन्दर प्रवेश करके उसे शुद्ध और नीरोग भी बनाती हैं । इस उपस्थानसे ही सूर्य स्नान (Sun-bath) का काम भी लिया जा सकता है ।

इन मंत्रोंमें परमात्माकी सूर्य रूपसे महिमा और प्रार्थना है ।

इसके बाद गायत्रीके रूपका फिर इस प्रकार बखान किया गया है:—

अग्निर्मुखं । ब्रह्मा हृदयं । रुद्रः शिखा । श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेय-वसना तथा । श्वेतानुलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता । आदित्य मण्डलस्था च ब्रह्म (रुद्र वा विष्णु) लोकगता शुभा ।

अर्थात् उसका मुख अग्नि है, हृदय ब्रह्मा, शिखा रुद्र है । वह श्वेतवर्णकी है, रेशमी कपड़ा पहने, श्वेत चन्दन तथा फूलों और गहनोंसे भूषित, आदित्य मण्डलमें रहनेवाली तथा ब्रह्मलोकमें गयी हुई तथा शुभ करनेवाली है ।

दिन चढ़ जानेपर सूर्यकी अवस्थासे गायत्रीका यह आलंकारिक वर्णन किया गया है।

इसके उपरान्त यजुर्वेदके "तेजोऽसि" मंत्रसे गायत्रीका आवाहन करे।

तेजोऽसि यजुर्वेदके पहले अध्यायके अन्तिम (३१ वें) मंत्रका पिछला भाग है। इस मंत्रके ऋषि परमेष्ठी और देवता गायत्री है और गायत्रीका आवाहन करनेके लिये इसका विनियोग किया गया है। मंत्र इस प्रकार है :—ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देव यजनमसि।

इसका अर्थ है, "हे गायत्री तू तेज है, तू वीर्य है, तू अमृत है, तू देवताओंका प्रिय नाम धाम है, तू देवताओंका यज्ञ है।"

इस प्रकार आवाहन् करके गायत्र्यसि मंत्रसे गायत्रीका उपस्थान या नमस्कार किया जाता है। इस गायत्र्यसि मंत्रके ऋषि विमल, देवता परमात्मा और छन्द गायत्री है और गायत्रीके उपस्थानके लिये इसका विनियोग है।

ॐ गायत्र्यस्येक पदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य पदसि नहि पद्यते नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे। ॐ असावदो मामापत्।

यह शतपथ ब्राह्मणके अन्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद्के ५ वें अध्यायके १४ वें ब्राह्मणका ७ वां मंत्र है।

गायत्री २४ अक्षरका छन्द होनेसे आठ आठ अक्षरोंमें बांटी गयी है, इसलिये त्रिपदी कहाती है। उसके पहले आठ अक्षरोंसे भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनो लोकोंका बोध होता है, दूसरे आठ

अक्षरोंसे ऋक्, यजूंषि और सामानि और तीसरे आठ अक्षरोंसे प्राण, अपान और व्यानका ग्रहण किया जाता है। परन्तु वह चतुष्पदी भी कही गयी है और उसका यह चौथा पद रजोगुणसे परे और दृश्यमान् है। सब कुछ तो रजोगुणमय है और जो वह ताप देता दिखता है, वह रजोगुणरहित तथा जगतके अधिपति रूपसे रहता है, इसलिये वह परोरजाः कहाता है और दिखाई देता है, इसलिये वह दर्शत कहाता है। सूर्यमण्डल मध्यवर्त्ती पुरुष नहीं दिखता, केवल सूर्य ही दिखता है। इसी रजोगुणरहित दृश्यमान् चतुर्थ वा तुरीय पदको मेरा नमस्कार है। गायत्रीका वह दर्शत और रजोगुणरहित पद सत्यमें प्रतिष्ठित है। चक्षु ही सत्य है, क्योंकि "सब मानें देखी, सुनी न माने कोय।" और "चक्षू सूर्यो अजायत्" अर्थात् परब्रह्मके चक्षुसे सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर यह सत्य बलमें प्रतिष्ठित है। प्राण ही बल है, क्योंकि बल साधारणतः प्राणके ही अधीन है और सत्यकी अपेक्षा प्राणका श्रेष्ठत्व निर्देश किया जाता है। उक्त गायत्री इस प्रकार अध्यात्म प्राणमें प्रतिष्ठित है। गायत्री "गय" को त्राण वा दुःखसे रहित करती है। प्राण ही "गय" या गायत्रीके गानेवाले या उपासक हैं। उन्हीं प्राणों वा "गयों" का त्राण करनेके कारण इसका नाम गायत्री है। आचार्य जिस उपनीत बालकको इस सूर्य दैवत गायत्री नाम सावित्रीका उपदेश देते हैं, वह यही गायत्री है और नहीं और वे जिसे उपदेश देते हैं, उसके प्राणको परित्राण वा दुःखरहित करते हैं।

परन्तु कहा है कि गायत्री तू अपद् वा पदरहित भी है, क्योंकि तेरा ऐसा कोई पद नहीं है जिससे तू जानी जा सके। वेदने

जब उसका पार न पाया और "नेति, नेति" कह बताया, तब न जानी जानेके कारण ही वह अपद भी है। इसी लिये जो उसका रजोगुणसे रहित दृश्यमान् चतुर्थ पद है, उसे नमस्कार किया गया है।

इस प्रकार इस मंत्रका अर्थ हुआ कि हे गायत्री तू एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी है और न जानी जानेके कारण अपद वा पदरहित भी है। रजोगुणसे रहित तेरा जो दृश्यमान् चौथा पद है, उसको मेरा नमस्कार है। मेरा शत्रु तेरी प्राप्तिके मेरे उद्योगमें बाधक न हो सके।

अंगन्यास।

अनन्तर गायत्री मंत्रसे फिर अंगन्यास किया जाता है। पहले ॐ भूः हृदयायनमःसे हृदय, ॐ भुवः शिरसे स्वाहासे सिर, ॐ स्वः शिखायै वषट्से शिखातक ऊपरके अंग स्पर्श करके, वहांसे नीचेकी ओर इस प्रकार उतरा जाता है :—ॐ तत्सवितुर्शिखायाम् शिखाको, ॐ वरेण्यम् शिरसि सिरको, ॐ भर्गो देवस्य नेत्रयोः दोनो आंखोंको, ॐ धीमहि श्रोत्रयोः दोनो कानोंको, ॐ धियो योनः कवचाय हुं दोनो बाहोंको छूकर ॐ प्रचोदयात् अस्त्राय फट् कह ताली बजा दे।

गायत्री जप।

इसके बाद गायत्रीका जप है। यह जप उसी मंत्रसे किया जाता है, जिससे सूर्याञ्जलि दी जाती है। अन्तर इतना ही है कि जपके समय मंत्रके अन्तमें भी "ॐ" कहते हैं। इस मंत्रके विनियोग

आदिकी व्याख्या ऊपर आ चुकी है, इसलिये यहां दुबारा नहीं दी गयी।

गायत्रीके जपके विषयमें मनुस्मृतिका कहना है कि ब्रह्मचारी और गृहस्थ तो १०८ बार जपे, पर वानप्रस्थ और संन्यासी दो हजार बार जपें। ब्रह्मचारियों और गृहस्थोंसे रियायत इसलिये की गयी है कि ये अग्निहोत्र करते थे और अग्नि गायत्रीका मुख है, इसलिये अग्निहोत्रके द्वारा उनका गायत्रीजप होता ही था। पर वानप्रस्थ और संन्यासी निरग्नि होते थे, इसलिये इन्हें अधिक गायत्री जप करनेको कहा गया है। आज तो ब्रह्मचारी प्रायः नहीं हैं और जो हैं वे अनग्निमान् ही हैं तथा गृहस्थ भी ऐसे ही हैं। इसलिये इन्हें कितना जप करना चाहिये? जितना अधिक हो सके, उतना ही करना चाहिये। पर अष्टोत्तरशत १०८ तो अवश्य करना चाहिये। बीमारी वा असमर्थतामें २८ अष्टविंशति वा कमसे कम १० बार तो अवश्य जपना ही चाहिये। यमका वचन है कि प्रभुने एक बार एक ओर चारो वेदोंको अंगसहित और दूसरी ओर गायत्रीको रखकर तोला, तो दोनो पलड़े बराबर रहे। इससे जाना जाता है कि यमस्मृति बननेके समय लोगोंने वेद पढ़ना छोड़ दिया था और गायत्रीकी भी उपेक्षा होने लगी थी। इसलिये समझा गया कि वेदपाठ या ब्रह्मयज्ञका फल गायत्री जपसे समझकर लोग गायत्री जपते रहेंगे और इसीसे यह बात लिख दी गयी।

गायत्री जपनेके लिये १०८ अथवा ५४ या २८ मनकोंकी एक माला रखी जाती है। ये चाहे सोनेके हों या रूपेके या तांबे, रत्न-

स्फटिक या रुद्राक्षके। इनमें पिछलेसे पहले श्रेष्ठ समझे जाते हैं और रुद्राक्षमालामें कुशकी गांठें लगी हों, तो उसका अनन्त फल बताया गया है। मालाके साथ ही लोग एक प्रकारकी समकोण थैली रखते हैं जो गोमुखी कहाती है। इसीमें माला डालकर जपते हैं. जिसमें कोई देख न सके। यदि गोमुखी या माला न हो, तो पहलीका काम गमछेसे और दूसरीका काम हाथकी अंगुलियोंसे लिया जाता है। हाथकी मालामें १० तककी गिनती होती है और उसी हिसाबसे एक दहाईसे १० दहाईतक उसे बढ़ा सकते हैं। दहिने हाथकी अनामिका अंगुलीकी पहली पोरका जहां अन्त होता है, उसे एक और जहां तीसरीका अन्त होता है उसे दो समझकर, फिर छोटीकी तीसरी पोरके अन्तको चार और पहलीके अन्तके आरम्भको पांच. अनामिका और मध्यमाके आरम्भको छ और सात तथा तर्जनीमें अनामिका और कनिष्ठकाकी तरह ८, ९ और १० बना ले।

गङ्गा आदि नदियों वा जलाशयोंमें खड़े होकर गायत्रीका जप न करना चाहिये क्योंकि गोभिलका वचन है कि गायत्री अग्निमुखी कही गयी है, इसलिये जलसे बाहर ही जपना चाहिये। बृहस्पतिका कहना है कि मार्जन जलमें करना चाहिये और प्राणायाम चाहे जहां किया जा सकता है। योगि याज्ञवल्क्यका वचन है कि घरमें गायत्री जपका जितना फल है. उसका तिगुना नदी किनारेका है, गोशालामें सौगुना, अग्निशालामें उससे अधिक तथा सब सिद्ध क्षेत्रोंमें लाख और देवताओंके सामनेका करोड़गुना तथा विष्णुके पासका अनन्त फल होता है।

प्रदक्षिणा वा समावर्त्तन ।

इस प्रकार जप करके "ॐ विश्वतश्चक्षुरुत" मन्त्रसे प्रदक्षिणा करे ।

ओं विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः ॥

इस मंत्रके द्रष्टा विश्वकर्मा भौवन अथवा ब्रह्मा हैं, देवता सूर्य तथा छन्द पुर उष्णिक् है और प्रदक्षिणा करनेके लिये इसका प्रयोग हुआ है। यह मंत्र यजुर्वेदके १७ वें अध्यायमें १९ वां है तथा ऋग्वेदके १० वें मण्डलके ६ टे अनुवाकके ८१ वें सूक्तमें है। इसका अर्थ है कि परमात्माकी आंखें चारो ओर हैं, चारो ओर मुख है, चारो ओर बाहु हैं और चारो ओर उसके पैर हैं। उसी अकेले देवताने अपनी बाहु शक्तियोंसे आकाश और पृथिवीको उत्पन्न किया है। तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकके पहले अनुवाकमें विश्वतश्चक्षुरुत मंत्र इस प्रकार पाया जाता है :—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखं विश्वतो हस्त उत विश्वतः स्यात् ।
सं बाहुभ्यां नमति संपतत्रैर्द्यावा पृथिवी जनयन् देव एकः ॥

शब्दोंमें कहीं कहीं अन्तर है सही, पर अर्थमें नहीं।

विसर्जन ।

प्रदक्षिणा करके बैठने बाद "ओं देवगातु" मन्त्रसे विसर्जन करे । "ओं देवागातु विदोगातुवित्वा गातु मित । मनसस्पतइमं देव यज्ञᳪस्वाहा वाते धाः ॥" कहकर "पूर्वाह्न (मध्याह्न वा सायं) सन्ध्याङ्गभूतेन अष्टोत्तर-शत गायत्रीजपेन ब्रह्म (रुद्र वा विष्णु) स्वरूपी सूर्यः प्रीयताम्" पढ़कर

जल पृथिवीपर छोड़ देना चाहिये। यह देवागातु मंत्र यजुर्वेदके ८ वें अध्यायका २१ वां मंत्र है। इस मंत्रके ऋषि मनसस्पति वा चन्द्रमा हैं और देवता वात है तथा छन्द विराट् है और इसका प्रयोग विसर्जनके लिये किया गया है। इस मंत्रका अर्थ है कि यज्ञ जानने-वाले देवता, आप यज्ञको जानकर यज्ञके समयमें आये और जानेका जो मार्ग हो, उससे आप पधारिये। हे मनसस्पति चन्द्रमा इस यज्ञको मैं तुम्हारे हाथमें देता हूं, तुम इसको वात देवतामें स्थापित करो। अनन्तर "पूर्वाह्न सन्ध्याके अंगस्वरूप १०८ गायत्री जपसे ब्रह्म (रुद्र वा विष्णु) स्वरूपी सूर्यकी प्रसन्नता हो" कहकर जल छोड़ दिया जाता है।

अनन्तर "उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनी।
ब्राह्मणैः समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥"

पढ़कर कुछ जल और छोड़ देते हैं। जैसे दो बार आवाहन हुआ, वैसे ही दो बार विसर्जन भी किया गया। यह मन्त्र भी तैत्तिरीय आरण्यकका ही है। पर यह कुछ हेरफेरसे मिलता है। हमने ऊपर जो पाठ दिया है, उसका अर्थ है कि उत्तर शिखरमें पैदा हुई और भूमिमें पर्वतवासिनी हे गायत्री देवि अपने उपासकोंसे प्रसन्न हो, तू सुखपूर्वक जा। यह तैत्तिरीय आरण्यकके १० वें प्रपाठकका ३६ वां अनुवाक है। पर इसके कई पाठान्तर भी हैं। कहीं "उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मूर्द्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्" पाठ मिलता है। ऋग्वेदी सन्ध्यामें "उदीच्यां शिखरे जाते भूम्यां पर्वतवासिनी। विष्णुना समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया" और सामवेदी सन्ध्यामें

"महेशवदनोत्पन्ना विष्णोर्हृदय सम्भवा। ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथेच्छया ॥" पाया जाता है। इन सबमें विशेष अर्थान्तर नहीं है ।

अन्तमें छ आचमन करके सन्ध्या समाप्त की जाती है ।

विशेष ज्ञातव्य ।

वेद मन्त्रों और विनियोगोंका जहांतक सम्बन्ध है, वहां तक माध्यन्दिन शाखावालोंके लिये यह नियम सर्वत्र समझना चाहिये कि वे "य" का उच्चारण "ज" और "ष" का उच्चारण "ख" करें। पर षट्को ष्वट कहें, "खखट" न कहें और न विष्णुको विखणु ही कहें। अन्य शाखावाले "य" और "ष" ही उच्चारण करें ।
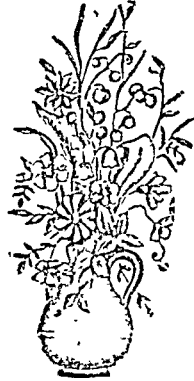
ॐ श्रीगणेशाय नमः।

अथ सन्ध्योपासनविधिः।

आचमन।

स्मार्त्ताचमनं कृत्वा (छ आचमन विना मन्त्रके करके)

मार्जन।

ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ भूर्भुवः स्वः।

इति कृत्वा मूर्द्धानमभिषिंचेत्=इन्हें पढ़कर सिरपर जल छिड़के।

अङ्गस्पर्श।

ॐ वाक्। ॐ प्राणः प्राणः। ॐ चक्षुः चक्षुः।
ॐ श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ॐ नाभिः। ॐ हृदयम्।
ॐ मूर्द्धा। ॐ यशोबलम्।

इनको पढ़ता हुआ क्रमशः मुख, दोनो नथुनों, दोनो आखों, दोनो कानों, नाभि, हृदय, सिर और दोनो बाहोंको स्पर्श करे।

सन्ध्याका आरम्भ।

ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः सन्ध्याकर्मारम्भे विनियोगः।

यह पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़े।

आसन ।

ॐ पृथ्वी मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मो देवता सुतलं छन्दः आसने विनियोगः । ॐ आसनाय नमः ।

पढ़कर पृथिवीपर आसन बिछावे ।

ॐ कूर्म मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मो देवताऽनुष्टुप् छन्दः आसने विनियोगः । ॐ कूर्मासनाय नमः ।

कहकर कूर्मके आसनके लिये पृथ्वीपर जल छोड़ दे ।

ॐ शरीर आत्मा ऋषिः सत्यपुरुषो देवता प्रकृतिश्छन्दः आसने विनियोगः । ॐ आत्मासनाय नमः ।

कहकर अपने आसनके लिये पृथ्वीपर कुछ जल छोड़ दे ।

सन्ध्याका संकल्प ।

ॐ उपात्त दुरितक्षयाय ब्रह्मलोक * प्राप्तिकामः पूर्वाह्न सन्ध्यामहमुपासे ।

यह कहकर जल लेकर पृथ्वीपर छोड़ देना चाहिये ।

सन्ध्याका ध्यान और आवाहन ।

प्रातः सन्ध्याके समय ।

ॐ गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्ष सूत्र

* मध्याह्न सन्ध्याके समय "रुद्रलोक प्राप्तिकामः" तथा "मध्याह्न सन्ध्यामहमुपासे" तथा ऐसे ही सायं सन्ध्याके समय "विष्णुलोकप्राप्तिकामः" और "सायं सन्ध्यामहमुपासे" कहना चाहिये ।

कमण्डलुम् । रक्तवस्त्रां चतुर्वक्त्रां हंसवाहन संस्थिताम् ॥१॥ ब्रह्माणीं ब्रह्मदैत्यां ब्रह्मलोक निवासिनीम् । ऋग्वेद कृतोत्संङ्गां जटामुकुट मण्डिताम् ॥२॥ आवहयाम्यहं देवीं गायत्रीं सूर्य्यमण्डलात् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ॥३॥ गायत्रि छन्दसाम्मातर्ब्रह्म-योने नमोऽस्तुते ।

हाथ जोड़कर उक्त श्लोक पढ़कर ध्यान और आवाहन करना चाहिये ।

मध्याह्न सन्ध्याके समय ।

ॐ सावित्रीं युवतीं शुक्लां शुक्लवस्त्रां त्रिलो-चनाम् ॥ १ ॥ त्रिशूलहस्तां वृषगां रुद्राणीं रुद्र दैवताम् । यजुर्वेद कृतोत्सङ्गां जटामुकुट मण्डि-ताम् ॥ २ ॥ कैलासविहितावासा मायान्तीं सूर्य्यमण्डलात् । वरदां त्र्यक्षरां साक्षाद्देवी-माहावयाम्यहम् ॥ ३ ॥ आगच्छ वरदे देवि

त्र्यक्षरे रुद्रवादिनि । सावित्रि छन्दसाम्माता रुद्रयोने नमोऽस्तुते ॥ ४ ॥

सायं सन्ध्याके समय ।

ॐ वृद्धां सरस्वतीं कृष्णां पीतवस्त्रां चतुर्भुजाम् । शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुड़वाहनाम् ॥ १ ॥ बदर्याश्रमवासान्तामायान्तीं सूर्य्यमण्डलात् । सामवेद कृतोत्सङ्गां वनमाला विभूषिताम् ॥ २ ॥ वैष्णवीं त्र्यक्षरां साक्षाद्देवी मावाहयाम्यहम् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे विष्णुवादिनि । सरस्वति छन्दसाम्मात विष्णुयोने नमोऽस्तुते ॥

प्रणव न्यास ।

ॐ अकारं सत्व रूपं नाभ्यां । ॐ उकारं रजोरूपं हृदये ॐ मकारं तमोमूर्ध्नि ।

कहकर क्रमशः नाभि, हृदय और सिरको छुए और उक्त गुणोंकी कल्पना उक्त अङ्गोंमें करे ।

कहकर क्रमशः नाभि, हृदय और सिरको छुए और उक्त गुणोंको कल्पना उक्त अङ्गोंमें करे।

अङ्गन्यास।

ॐ भूः हृदयायनमः। ॐ भुवः शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः शिखायै वषट्॥

कहकर हृदय, शिर और शिखाका स्पर्श करे।

करन्यास।

ॐ भूः अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ भुवः तर्जनीभ्यां नमः। ॐ स्वः मध्यमाभ्यां नमः। भर्गोदेवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥

पहले दोनो तर्जनियोंसे दोनो अंगूठे मूलसे ऊपर तक छुए। फिर अंगूठोंसे वैसे ही अंगुलियां छुए और बाद हथेलीसे हथेली और उसकी पीठसे पीठ छुए।

दूसरा अङ्गन्यास।

ॐ भूः पादयोः। ॐ भुवः जान्वोः। ॐ स्वः गुह्ये। ॐ महः नाभौ। ॐ जनः हृदये। ॐ तपः कण्ठे। ॐ सत्यं भ्रूमध्ये॥

फिर।

ॐ भूः हृदयाय नमः। ॐ भुवः शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः शिखायै वषट्। ॐ तत्सवितुर्शिखायास्। ॐ वरेण्यम् शिरसि। ॐ भर्गोदेवस्य नेत्रयोः। ॐ धीमहि श्रोत्रयोः। ॐ धियो यो नः कवचाय हुं। ॐ प्रचोदयात् अस्त्राय फट्॥

इन न्यासोंमें जिन जिन अंगोंकी चर्चा है, उन्हें छुए और अन्तिमसे ताली बजा दे।

प्राणायाम।

ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः प्राणायामे विनियोगः।

ॐ सप्तव्याहृतीनां प्रजापति ऋषिरग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्र विश्वेदेवा देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पंक्तित्रिष्टुप्जगत्यश्छन्दांसि प्राणायामे विनियोगः।

ॐ तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री छन्दः प्राणायामे विनियोगः।

ॐ आपोज्योरिति प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्माग्निर्वायुःसूर्या देवताः आसुरी गायत्री छन्दः प्राणायामे विनियोगः।

ऊपर लिखा प्रत्येक विनियोग पढ़कर पृथ्वीपर कुछ जल छोड़ दे।

ततः *भूर्भुवः स्वरिति* शिखायां पर्य्युक्ष्य अंगुष्ठेन दक्षिण नासापुटे वायुं गृह्णीयात् तच्च कुर्वन्नाभिदेशस्थं विष्णुं नीलोत्पलदलश्यामं चतुर्भुजं महात्मानं ध्यायेत्। अंगुष्ठानामिकाभ्यां नासापुटद्वयं निरुध्य कुम्भकं कुर्वन् हृदि ब्रह्माणङ्कमलासनं रक्तगौरं चतुर्वक्त्रं चिन्तयेत्। रेचकञ्चानमिकाकनिष्ठिकाभ्यां वामनासापुटं निरुध्य दक्षिणेन वायुं विरेचयेत्। तदा च ललाटस्थं महेश्वरं त्रिनेत्रं शुद्धस्फटिक संकाशं निर्म्मलं पापनाशनं चिन्तयेत्। एवं त्रिरभ्यसेत्।

अनन्तर "भूः" "भुवः" और "स्वः" पढ़कर शिखापर जल छिड़ककर अंगूठेसे दहिना नथुना बन्द कर बायें नथुनेसे वायु ग्रहण करे और ऐसा करता हुआ नाभि देशमें नीलकमलदलके समान चतुर्भुज महात्मा विष्णुका ध्यान करे। अंगूठे और अनामिकासे दोनो नथुने बन्द कर कुम्भक करता हुआ हृदय देशमें कमलासन रक्तवर्ण चतुर्मुख ब्रह्माका ध्यान करे। बाद ललाटमें त्रिनेत्र शुद्ध स्फटिक रत्नके समान पापनाशक महेश्वरका ध्यान करे। इस प्रकार तीन तीन बार अभ्यास करे।

ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐ तपः। ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओमापोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्॥

प्रातः आचमन।

ॐ सूर्य्यश्चमेति नारायण ऋषिः लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप् छन्दः आचमने विनियोगः।

यह विनियोग पढ़कर जमीनपर जल छोड़े। अनन्तर दहिने हाथमें जल लेकर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर ६ आचमन करे।

ॐ सूर्य्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां। यद्रात्र्या पाप मकार्षं। मनसावाचा हस्ताभ्यां। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किंच दुरितं मयि। इदमहममृतयोनौ। सूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि। स्वाहा॥

मध्याह्न आचमन।

ओमापः पुनन्त्विति मारीच काश्यप ऋषिरापो देवता गायत्री छन्दः आचमने विनियोगः।

यह विनियोग पढ़कर पृथिवीपर थोड़ा जल डालकर अगले मंत्रसे आचमन करे।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु मां। पुनन्तु ब्रह्मणस्पति र्ब्रह्मपूता

पुनातु मां । यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्च-
रितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतांच प्रति
ग्रहॶ स्वाहा ॥

सायं आचमन ।

ॐ अग्निश्चमेति नारायण ऋषिः लिंगोक्ता देवता त्रिष्टुप्
छन्दः आचमने विनियोगः ।

यह विनियोग पढ़कर पृथिवीपर जल छोड़े और फिर अगला मंत्र
पढ़कर आचमन करे ।

ओमग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु
कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां । यदह्ना पापमकार्षं
मनसावाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना
अहस्तदवलुम्पतु । यत्किञ्च दुरितं मयि इदम-
हममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि । स्वाहा ॥

मार्ज्जन ।

ओमापो हिष्ठेति तिसृणां सिन्धुद्वीप ऋषिरापो देवता
गायत्री छन्दः मार्ज्जने विनियोगः ।

यह पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे । उपरान्त तीन कुशोंसे मार्ज्जन
करे । कुशोंके अभावमें तीन उंगलियोंसे मार्ज्जन करे । सातसे
सिरपर, आठवेंसे भूमिपर और नवेंसे फिर सिरपर मार्ज्जन करे ।

ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः । ॐ तान ऊर्ज्जे दधातन । ॐ महेरणाय चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसः । ॐ तस्य भाजयते ह नः । ॐ उशतीरिव मातरः । ॐ तस्मा अरं गमाम वः । ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ । ॐ आपो जनयथा च नः ॥

अघमर्षण ।

ओं द्रुपदा दिवेति प्राजापतिरश्वि सरस्वतीन्द्रा ऋषयः * आपो देवताः अनुष्टुप् छन्दः अवभृथे विनियोगः ।

यह पढ़ते हुए पृथिवीपर जल छोड़े ।

ततः चुल्केन जलमादाय नासिकाग्रे नियोज्य प्राणमारुतं निरुध्य द्रुपदां जपेत् अर्थात् फिर चुल्लूमें जल लाकर नाकके आगे लगाकर प्राणवायुको रोककर द्रुपदाका मंत्र जपे ।

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेण वाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥

---

* जिन लोगोंकी माध्यन्दिन शाखा है, उन्हीको "प्राजापत्यश्वि सरस्वतीन्द्रा ऋषयः" कहना चाहिये और सबको "कोकिलो राजपुत्र ऋषिः" पढ़ना चाहिये ।

इति तज्जलं शिरसि मार्जयेत=यह पढ़ता हुआ उस जलको सिरपर मार्जन करे ।

अघमर्षण ।

ॐ ऋतं च सत्यञ्चेत्यघमर्षण ऋषिः भावभृतो देवता अनुष्टुपछन्दः अघमर्षणे विनियोगः ।

ततः कराभ्यां जलमादाय नासिकाग्रे नियोज्य प्राणमारुतं निरुध्याघमर्षण सूक्तं जपित्वा जलं भूमौ निषिञ्चेत=फिर अंजलिमें जल लेकर नाकके आगे लगाकर प्राणवायुको रोककर अघमर्षण सूक्त जपकर जल पृथिवीपर फेंक दे ।

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत् । ततो रात्रि रजायत् ततः समुद्रोऽर्णवः ॥ समुद्रादर्णवा दधिसंवत्सरो अजायत् । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्ष मथो स्वः ॥

आचमन ।

ॐ अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरापो देवता अनुष्टुप्छन्दः आचमने विनियोगः ।

पढ़ता हुआ थोड़ा जल लेकर भूमिपर डाल दे । बाद दूसरा जल

हाथमें लेकर अगले मंत्रसे आचमन करे और उसके बाद फिर ५ आचमन करे।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार। आपोज्योतीरसोऽमृतम्॥

सूर्याञ्जलि वा सूर्यार्घ्य।

ततः सूर्याञ्जलिन्दद्यात्=बाद सूर्याञ्जलि देना चाहिये।

ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः सूर्याञ्जलिदाने विनियोगः।

ॐ व्याहृतीनां प्रजापति ऋषिरग्निवायु सूर्या देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दांसि सूर्याञ्जलिदाने विनियोगः।

ॐ तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री छन्दः सूर्याञ्जलिदाने विनियोगः।

इनमें प्रत्येक विनियोगको पढ़कर भूमिपर जल डाले और बाद अगले मंत्रसे एक एक करके तीन अञ्जलियां सूर्यको दे। मध्याह्न सन्ध्यामें एक ही अञ्जलि दे।

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

इति सपुष्पंजलं सूर्य लक्षीकृत्वोर्ध्वं क्षिपेत्। ततः प्रदक्षिणं (देव एकः)। आवृत्योदकमुपस्पृश्योत्तानकरो आदित्यमुपतिष्ठेत्=पुष्पयुक्त

जल लेकर सूर्यको लक्ष्यकर ऊपरकी ओर फेंके। फिर "देव एकः" कहकर प्रदक्षिणा करे। अनन्तर जल स्पर्श करके प्रातः सन्ध्याके समय अंजलि बांधकर सूर्यका उपस्थान करे।

उपस्थान।

ॐ उद्वयमिति प्रस्कण्व ऋषिः सूर्यो देवतानुष्टुप्छन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ उद्वयन्तमसस्परिः स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्य मगन्मज्योति रुत्तमम्।

ॐ उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिः सूर्यो देवता गायत्री छन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।

ॐ चित्रं देवानामिति कुत्साङ्गिरस ऋषिः सूर्यो देवता त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

ॐ तच्चक्षुरिति दध्यंगाथर्वण ऋषिः सूर्यो देवता पुर उष्णिक् छन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगः।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्र मुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

अग्निर्मुखं । ब्रह्मा हृदयम् । रुद्रः शिखा । श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेय वसना तथा । श्वेतानुलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च भूषिता । आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्म (रुद्र वा विष्णु) लोकगतापि वा । अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ।

आवाह्य यजुषानेन तेजोसीति विधानतः ।

इस यजुर्मंत्र तेजोऽसि विधिसे आवाहन करके ।

तेजोऽसीति परमेष्ठी ऋषिः गायत्री देवता यजुः गायत्र्यावाहने विनियोगः ।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥

गायत्र्यसीति विमल ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ।

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्य

पदसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे । ॐ असावदो माप्रापत् ॥

ततो विन्यस्य जपेत्=बाद न्यास करके जपे ।

ॐ भूः हृदयाय नमः । ॐ भुवः शिरसे स्वाहा । ॐस्वः शिखायै वषट् । ॐ तत्सवितुर्शिखायाम् । ॐ वरेण्यं शिरसि । ॐ भर्गोदेवस्य नेत्रयोः । ॐ धीमहि श्रोत्रयोः । ॐ धियो यो नः कवचाय हुं । ॐ प्रचोदयात अस्त्राय फट् ।

गायत्री जप ।

ॐ प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मा देवता गायत्री छन्दः गायत्री जपे विनियोगः ।

ॐ व्याहृतीनां प्रजापति ऋषिरग्निवायुसूर्या देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुपछन्दांसि गायत्री जपे विनियोगः ।

ॐ तत्सवितुर्विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्री छन्दः गायत्री जपे विनियोगः ।

ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ ॥

प्रदक्षिणा वा समावर्त्तन ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वकर्मा भौवन ऋषिः सूर्यो देवता पुर उष्णिक् छन्दः समावर्त्तने विनियोगः ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखं विश्व-
तो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति
सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः ॥

इति प्रदक्षिणी कृत्योपविश्य । इससे प्रदक्षिणा करके बैठकर

ॐ देवागातु विदो इति मनसस्पति ऋषिर्वातो देवता
विराट् छन्दः विसर्ज्जने विनियोगः ।

हाथमें जल लेकर इस मंत्रसे विसर्ज्जन करे ।

ॐ देवागातुं विदो गातुं वित्वा गातुमित ।
मनसस्पतऽइमं देव यज्ञᳬ स्वाहा वातेधाः ॥

पूर्वाह्ण (वा मध्याह्न वा सायाह्न) सन्ध्यांगभूतेन अष्टोत्तर-
शत गायत्री जपेन ब्रह्म (रुद्र वा विष्णु) स्वरूपी सूर्यः प्रीयताम ।

ॐ उत्तरे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतवासिनी ।
ब्राह्मणैः समनुज्ञाते गच्छ देवि यथासुखम् ॥

इति गायत्रीं विसृज्य द्विराचमेत्=गायत्रीका विसर्जन कर छ
आचमन करे ।

इति सन्ध्योपासन विधिः समाप्ता ।

तर्पण ।

—*—

पंच महायज्ञके पितृयज्ञका एक अंग तर्पण भी है। तर्पण तृप्त करनेको कहते हैं। परन्तु आजकल पितरोंके नामपर जलांजलि देनेको ही तर्पण कहते हैं। देवतर्पण, ऋषितर्पण और पितृतर्पण मिलकर पूरा तर्पण होता है। देवताओं, ऋषियों और पितरोंका जो ऋण मनुष्योंपर होता है, उसका आंशिक शोध इस देव, ऋषि और पितृ-तर्पणसे होता है। यह तर्पण नित्य कर्त्तव्य कर्म है और सन्ध्यो-पासनके उपरान्त किया जाता है। देव रूपसे देवता ही नहीं, ईश्वरीय सृष्टिके जीवोंके प्रति मनुष्य धर्मके पालनके लिये—क्योंकि मनुष्य ही सब प्राणियोंका राजा है—सबके नामपर जलदान किया जाता है। जिन ऋषियोंने विशेष उपकार किये हैं, उनका स्मरण इस जलांजलिदान वा तर्पणमें किया जाता है और पितरोंके कारण तो संसारमें अपना अस्तित्व तथा उन्नति ही है, इसलिये उनका उपकार न मानना और उनका स्मरण न करना कृतघ्नता समझकर तर्पणकी यह व्यवस्था की गयी है। तर्पण नित्य कर्म है, परन्तु जहां सब धर्मकर्ममें कमी होती चली गयी, वहां तर्पण भी छूट गया और अब पितृपक्ष वा कनागतमें ही लोग विशेषकर तर्पण करने लगे।

इस तर्पणके तीन भाग हैं देवतर्पण, ऋषितर्पण और पितृतर्पण। शंखके मतसे तर्पणका जल पृथिवीपर गिरना चाहिये, किसी वर्त्तन या

जलमें नहीं। कहा है "नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैक पाणिना। नावतिष्ठति तत्तोयं यन्न भूमौ प्रदीयते।" तर्पणके लिये यों तो जलके सिवा कुश, यव, अक्षत, तिल और फूलकी आवश्यकता होती है और कोई कोई अर्घा नामका एक पात्र भी रखते हैं। परन्तु इनके अभावमें अकेले जलसे भी काम लिया जाता है। देवताओंका तर्पण यवाक्षत युक्त और किसीके मतसे केवल अक्षतयुक्त जलसे किया जाता है और ऋषियोंका भी ऐसे ही होता है, परन्तु सनकादिके तर्पणमें यवयुक्त जल लगाते हैं और पितरोंके तर्पणमें तिल और अक्षत जलके साथ मिलाते हैं। देवताओंका तर्पण पूर्व मुंह, सनकादि ऋषिपुत्रोंका उत्तर मुंह और मरीच्यादि ऋषियोंका पूर्व मुंह तथा पितरोंका दक्षिण मुंह बैठकर किया जाता है। साथ ही देवताओं और ऋषियोंका तर्पण उपवीती होकर अर्थात् बायें कन्धेसे दहिनी बगलके नीचे जनेऊ पहनकर किया जाता है। सनकादिका निवीती या संवीती होकर अर्थात् मालाकी तरह जनेऊ पहनकर किया जाता है और पितरोंका प्राचीनावीती होकर अर्थात् दाहने कन्धेसे बायीं बगलके नीचे पहन कर किया जाता है। उपवीतीको सव्य, प्राचीनावीतीको अपसव्य और संवीतीको कण्ठोत्तरीय भी कहते हैं। कुशोंकी पवित्री बनाते हैं, जिन्हें "पैंती" भी कहते हैं। ये पवित्री छोटी अंगुली या अनामिकामें पहनी जाती है। दहिने हाथकी पवित्री दो कुशोंकी होती है और बायेंकी अधिक अथवा तीनकी ही। पितृ तर्पणके समय जलमें भी कुश रख लिया जाता है। देवताओंको एक एक, सनकादिको दो दो, मरीच्यादि ऋषियोंको भी एक एक तथा पितरोंको तीन तीन अञ्जलियां दी जाती हैं।

देव और पितृ कार्य तथा आचमनके लिये दहिने हाथके कई भाग किये गये हैं। इनकी संज्ञा तीर्थ है। हथेलीका जो भाग अंगूठेके मूलके पास होता है, उसका नाम ब्रह्म तीर्थ है। आचमन ब्रह्म तीर्थसे ही किया जाता है। छोटी अंगुली या कनिष्ठाके मूलके निकटके स्थानका नाम प्रजापति तीर्थ है। तर्जनीके मूलके पासका स्थान पितृतीर्थ और अंगुलियोंके सिरे देव तीर्थ कहाते हैं। देवताओंकी पूजामें देवतीर्थ और उन्हें जल देनेमें प्रजापति तीर्थसे काम लिया जाता है। पितरोंको जल वा पिण्ड देनेमें पितृ तीर्थका उपयोग होता है।

हिन्दुओंके अन्य कार्योंकी तरह तर्पण भी विस्तारके साथ करनेकी बात है, परन्तु यहां समयके अनुसार वह संक्षिप्त किया गया है।

तर्पणका आरम्भ।

आचमन करके पहले आवाहनका यह श्लोक या मंत्र पढ़ना चाहिये :—

ॐ ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे ऋषयस्सनकादयः।
आगच्छन्तु महाभागा ब्रह्माण्डोदर वर्त्तिनः॥

अनन्तर पूर्वकी ओर मुंह करके देव तीर्थसे देवताओं, प्रजापति और अन्य देवताओं तथा जीवोंका अक्षत और जलसे तर्पण करे।

देव तर्पण।

ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रूद्रस्तृप्यताम्। ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्।

बाद थोड़ासा जल लेकर

ॐ देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः ।
क्रूरास्सर्पाः सुपर्णाश्च तरवोजृम्भकाः खगाः ॥
विद्याधरा जलचरास्तथैवाकाशगामिनः ।
निराधाराश्च ये जीवा पापेऽधर्मे रताश्च ये ॥
तेषामप्यनायैतद्दीयते सलिलम्मया ॥

उसी देव तीर्थमे देवताओं, यक्षों, नागों, गन्धर्वों, अप्सराओं, असुरों, कुटिलों, सर्पों वा रेंगनेवाले जीवों, अच्छे पंखवालों, वृक्षों, पक्षियों, विद्याधरों, जलचरों, नभचरों तथा उन जीवोंकी, जो निराधार तथा पाप और अधर्ममें फंसे रहते हैं, तृप्तिके लिये मैं यह जल देता हूं ।

मनुष्य वा ऋषिपुत्र तर्पण ।

संवीती या निवीती होकर उत्तर मुंह करके प्रजापति तीर्थसे यव-युक्त जलमे यह पढ़कर सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पञ्चशिखाको दो वार जल दे ।

सनकश्च सनन्दनश्च तृतीयश्च सनातनः ।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना खिला ।

ऋषितर्पण ।

उपवीती होकर पूर्वकी ओर मुंह करके अक्षत और जलसे इन ऋषियोंको एक एक अंजलि दे ।

ॐ मरीचिस्तृप्यताम् । ॐ अत्रिस्तृप्यताम् । अङ्गिरास्तृप्यताम् । ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम् । ॐ पुलहस्तृप्यताम् । ॐ क्रतुस्तृप्यताम् ।

ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्।

पितृतर्पण।

प्राचीनावीती वा अपसव्य हो दक्षिण मुंह बैठकर पहले देवपितरोंका तर्पण तिल, जल और चन्दनसे इस प्रकार पढ़कर करे :—

> कव्यवाडनलस्सोमो यमश्चैवार्यमस्तथा।
> अग्निष्वात्ताः बर्हिषदः आज्यपास्सोमपास्तथा।
> हविष्यन्तस्सुकालिनश्चैते पितृगणास्स्मृताः॥
> ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः॥

ये देव पितर पितरोंके देवता हैं। कव्यवाल वा कव्यवाट् कव्य के जानेके कारण नाम पड़ा है। देवताओंके अग्निमें पके हुए चरु पुरोडाशादिका स्वाद लेनेके कारण ये अग्निष्वात्त कहाते हैं। ये इन्द्राग्नि आदि देवताओंके पितर और पूज्य हैं। बर्हिषद नामके पितर दैत्य दानव यक्षोंके पितर हैं। ये अत्रिके पुत्र हैं। आज्यप पुलस्त्यके पुत्र (घी पीनेवाले) वैश्योंके पितर हैं। सोमप (सोम पीनेवाले) पितर शुक्रके पुत्र हैं। अमावस्या पूर्णमासी आदिमें पुरोडाशादि होमकी सामग्री खानेवाले हैं। अच्छी तरह समय काटनेवाले सुकाली कहाते हैं। अग्निष्वात्त और सोमप ब्राह्मणोंके, बर्हिषद और हविष्यन्त क्षत्रियोंके, और सुकाली शूद्र, म्लेच्छादि जातियोंके पितर हैं। इतनी छूतछात रहते हुए भी हिन्दू विचारों और आचारोंमें उदार हैं और ब्राह्मणपर्यन्त इन दिव्य पितरोंको, जिनमें म्लेच्छों और अन्त्यजोंके

सुकाली पितर भी हैं, जल देने बाद अपने पितरोंको जल देते हैं। अनन्तर नीचे लिखे श्लोक पढ़कर १४ मन्वन्तरोंको जल देना चाहिये।

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥

जो लोग विस्तारसे इन देव पितरोंका तर्पण करना चाहें, वे कहें "ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम्" वा "अग्निष्वात्तास्तृप्यन्ताम् इदं सतिल चन्दनोदकं तेभ्यः स्वधा नमः।" इसी प्रकार पढ़कर वर्हिषद, आज्यपा, सोमपा, हविष्यन्त और सुकाली आदिको भी जल दे।

अनन्तर "आगच्छन्तु मे पितर इमां गृह्णन्तु जलाञ्जलिम्" पढ़कर जल, तिल और कुश लेकर अपने पितरोंका तर्पण करे।

"ॐ अद्यामुक गोत्रो ऽस्मत्पिताऽमुक शर्म्मा तृप्यतामिदं जलं सतिलं तस्मै स्वधा नमः" कहकर पितृतीर्थसे तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। पिछली दो अंजलि देनेके समय "तस्मै स्वधा" कहनेसे भी काम चल जायगा। इसी प्रकार "ॐ अद्यामुक गोत्रो ऽस्मत्पितामहोऽमुक शर्म्मा तृप्यतामिदं जलं सतिलं तस्मै स्वधा नमः" कहकर तीन अंजलि पितामहको और "ॐ अद्यामुक गोत्रो ऽस्मत्प्रपितामहोऽमुक शर्मा तृप्यतामिदं जलं सतिलं तस्मै स्वधा नमः" कह कर तीन अञ्जलि प्रपितामहको देना चाहिये।

पश्चात् "ॐ अद्यामुक गोत्रा ऽस्मन्माता ऽमुकी देवी तृप्यतामिदं

जलं सतिलं तस्यै स्वधा नमः" कहकर माताको और इसी प्रकार पितामही और प्रपितामहीका तीन तीन अञ्जलियोंसे तर्पण करे ।

बाद मातामह, प्रमातामह और वृद्ध प्रमातामह तथा मातामही, प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामहीको उक्त विधिसे तीन तीन अञ्जलि जल देना चाहिये ।

इसके उपरान्त बन्धु बान्धवों तथा अन्य परलोकगत पुरुषोंको यह पढ़कर एक अञ्जलि जल देना चाहिये ।

ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु ये चास्मत्तोयकांक्षिणः ॥

देव, ऋषि वा पितृ तथा मनुष्य फिर जो बाकी बच गये हैं, उन्हें यह पढ़कर एक अञ्जलि जल देना चाहिये :—

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त देवर्षि पितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरस्सर्वे मातृमातामहादयाः ॥
अतीतः कुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनां ।
आब्रह्म-भुवनांल्लोकान्दीयते सलिलम्मया ॥

अन्तमें यह पढ़कर गमछा निचोड़ दे ।

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः ।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्र निष्पीड़ितोदकम् ॥

* इति देवर्षि पितृतर्पणं समाप्तम् *

गो ग्रासदान।

—०—

भोजन करनेके पहले गायको रोटी दी जाती है, जो गो ग्रास कहाती है। किसी समय यह रोटी देकर अथवा रखकर लोग स्वयं भोजन किया करते थे। अब भी कहीं कहीं ऐसा करते हैं, पर अधिकतर भोजनके लिये चौकेमें बैठनेपर जब थाली सामने आती है, तब अन्नको अभिमन्त्रित कर और पृथ्वीपर सात ग्रास डालनेके बाद रोटीपर कुछ दाल तरकारी आदि रख देते हैं और उस समय यह पढ़ते हैं :—

सौरभेयाः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्य मातरः॥

बाद उसकी चारो ओर जल घुमा देते हैं।

अब काक बलि नहीं रही। जबर्दस्ती कौआ चाहे तो खा सकता है। पर कुत्तेका हक अभी स्वीकार किया जाता है, क्योंकि यह रखवाली करता है। इस लिये भोजनोत्तर इसे रोटी दे देते हैं।

भोजन विधि।

संसारमें तेजस्वी और वीर्यवान् मनुष्य ही कुछ कर सकता है। हीनवीर्य और निस्तेजका जीवन भार हो जाता है। इस लिये जिससे

तेज और वीर्यकी वृद्धि हो, वही पदार्थ खाना चाहिये। अन्नमें यह बात है। इस लिये तैत्तिरीय उपनिषद्में अन्नकी बड़ी महिमा गायी गयी है। कहा गया है :—

"अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीं श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमवाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति॥

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। तदेतदन्न मन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति। प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥

"न कंचन वसतो प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। अराध्यस्मा अन्नमित्या चक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नं राद्धम्। मुखतोऽस्मान्नं राध्यते। एतद्वै मध्यतोऽन्नं राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नं राद्धम्। अन्ततोऽस्मान्नन्नं राध्यते॥"

अर्थ—अन्नसे ही वे सब प्राणि पैदा किये जाते हैं जो पृथिवीपर रहते हैं। फिर वे अन्नसे ही जीते हैं और अन्तमें अन्नहीमें मिलते हैं। क्योंकि अन्न ही सब प्राणियोंसे पुराना है, इसी लिये वह सर्वौषध है अर्थात् सबकी दवा है। जो अन्नको ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करते हैं, वे सब अन्न पाते हैं। अन्नसे प्राणि

उत्पन्न होते हैं। पैदा होकर अन्नसे ही बढ़ते हैं। वह खाया जाता है और खाता है, इसलिये अन्न कहाता है।

अन्नकी निन्दा न करे, यही नियम है। प्राण ही अन्न है। शरीर अन्न खाता है। प्राण शरीरमें रहता है और शरीर प्राणमें रहता है। जो यह जानता है कि अन्न अन्नमें रहता है, वही ऊंचा रहता है, क्योंकि वह अन्नवान् होता है और अन्न खा सकता है, क्योंकि सन्तान, पशु, ब्रह्मतेज और कीर्त्तिसे वह बड़ा होता है।

कभी किसी अतिथिको विमुख न लौटावे। यही नियम है। इस लिये जिस किसी उपायसे हो बहुत अन्न संग्रह करे, क्योंकि अच्छे लोग उससे (अतिथिसे) कहते हैं कि तुम्हारे लिये भोजन तैयार है। यदि वह पूरा भोजन देता है, तो पूरा पाता है। यदि मध्यम देता है, तो मध्यम और बड़ी कंजूसीसे देता है तो वैसा ही कम पाता है।

यह तैत्तिरीय उपनिषत्का उपदेश है। इस लिये अन्न बड़ी सावधानी और विधिसे भोजन करनेकी आवश्यकता समझकर पुराने लोगोंने भोजनकी विधि बनायी है। इससे पहले अन्नको अभिमन्त्रित करते हैं।

उक्त मंत्र विनियोग सहित इस प्रकार है :—

ॐ सत्येनत्वर्त्तेन परिषिञ्चामि तेजोऽसीति परमेष्ठी ऋषिः अन्नन्देवता यजुः अन्नाभिमंत्रणे विनियोगः।

ॐ सत्येनत्वर्त्तेन परिषिञ्चामि तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि।

इस मंत्रका ऋषि परमेष्ठी और देवता अन्न है और इसे सत्य और ऋतसे सिंचन करता हूं। किस अभिप्रायसे कि यह तेज है, शुक्र (वीर्य) है और अमृत है। अर्थात् यह अन्न मुझमें तेज और वीर्य उत्पन्न करे और मेरे लिये अमृत हो। इस भावनासे भोजन करनेसे इष्टफलकी प्राप्ति होती है।

रातको "ऋतेन त्वा सत्येन" कहते हैं।

अनन्तर अगले मंत्र पढ़कर सात ग्रास पृथिवीपर डालना चाहिये :—

ॐ भूपतये नमः। इदं भूपतये॥ ॐ भुवनपतये नमः। इदं भुवनपतये॥ ॐ भूतानाम्पतये नमः। इदं भूतानाम्पतये॥ ॐ विष्णवे नमः। इदं विष्णवे॥ ॐ नीलकण्ठाय नमः। इदं नीलकण्ठाय॥ ॐ गणेशाय नमः। इदं गणेशाय॥ ॐ विरूपाक्षाय नमः। इदं विरूपाक्षाय॥

इसके उपरान्त निम्नलिखित विनियोग और मंत्र पढ़कर आचमन करना चाहिये :—

ॐ अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिः आपो देवता अनुष्टुप् छन्दः आचमने विनियोगः।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायाम् विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्।
अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥

यह अन्तश्चरसि मंत्र सन्ध्यामें आ चुका है। पर यहां उसमें कुछ विशेषता है और वह विशेषता यह है कि इसके पीछे एक टुकड़ा और

बढ़ा दिया गया है। यहांसे प्राणाग्निहोत्र प्रारम्भ होता है। इस मंत्रका अर्थ है कि हे जल तू प्राणियोंके अन्तःकरणमें घूमता है। तेरा मुंह चारो ओर है। तू यज्ञ है और तू यज्ञाहुति है। तू जल है, ज्योति है, रस है और अमृत है और सच्चिदानन्द ब्रह्म है। तू अमृतका बिछौना है। स्वाहा।

इसके बाद पंच प्राणोंके लिये अन्नकी आहुति दी जाती है और वहां इस प्रकारसे कि अंगूठे और अनामिकासे जितना अन्न उठे उतनेकी आहुति मुंहमें दी जाय। इस प्राणाग्निहोत्र की बड़ी महिमा उपनिषदोंमें गायी गयी है। आहुतियां इन मंत्रोंसे दी जाती हैं :—

ओं प्राणाय स्वाहा। इदं प्राणाय ॥
ओं अपानाय स्वाहा। इदं अपानाय ॥
ओं व्यानाय स्वाहा। इदं व्यानाय ॥
ॐ उदानाय स्वाहा। इदं उदानाय ॥
ओं समानाय स्वाहा। इदꣳ समानाय ॥

इसके उपरान्त विना मन्त्रके एक बार आचमन करके भोजन करे।

जब भोजन कर चुके, तब उच्छिष्ट भोजनसे नरकोंमें पड़े अधम पितरोंके लिये कुछ अन्न यह मन्त्र पढ़कर पृथिवीपर डाल दे :—

ओं मद्भुक्तोच्छिष्टशेषेण भुञ्जते पितरोऽधमाः।
तेषा मन्नम्मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

अर्थात् मैं भोजन कर चुका और भोजनकी जो जूठन बची उसे अधम पितरोंको खिलाता हूं। उनको मैं अन्न देता हूं और इससे उनकी अक्षय्यतृप्ति हो।

बढ़ा दिया गया है। यहांसे प्राणाग्निहोत्र प्रारम्भ होता है। इस मंत्रका अर्थ है कि हे जल तू प्राणियोंके अन्तःकरणमें घूमता है। तेरा मुंह चारो ओर है। तू यज्ञ है और तू यज्ञाहुति है। तू जल है, ज्योति है, रस है और अमृत है और सच्चिदानन्द ब्रह्म है। तू अमृतका बिछौना है। स्वाहा।

इसके बाद पंच प्राणोंके लिये अन्नकी आहुति दी जाती है और वहां इस प्रकारसे कि अंगूठे और अनामिकासे जितना अन्न उठे उतनेकी आहुति मुंहमें दी जाय। इस प्राणाग्निहोत्र की बड़ी महिमा उपनिषदोंमें गायी गयी है। आहुतियां इन मंत्रोंसे दी जाती हैं :—

ओं प्राणाय स्वाहा। इदं प्राणाय

१५०, बी०, मछुआ बाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।